

म(२५४)

उर्दू-ज़बान का संक्षिप्त इतिहास

रामनरेश त्रिपाठी

सं०
२३

म (१५५)

उर्दू-ज़बान का संक्षिप्त इतिहास

रामनरेश त्रिपाठी

सं०
२३

उर्दू-ज़बान का संक्षिप्त इतिहास

लेखक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रस्तावना-लेखक

पंडित अमरनाथ झा

(वाइस चांसलर, इलाहाबाद युनिवर्सिटी)

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर

प्रयाग

पहला संस्करण]

दिसंबर, १९४०

[मूल्य आठ आने

भूमिका

उर्दू-ज़बान और उसकी कविता के असली स्वरूप से हिन्दीवाले जानकार हो जायँ, इसी उद्देश्य से मैंने यह पुस्तक लिखी है।

उर्दू-ज़बान महावरों की है। भाषा की दृष्टि से उसमें कई खूबियाँ हैं, जिन्हें जानकर हिन्दी के लेखक लाभ उठा सकते हैं।

उर्दू-कविता में कहने का तर्ज़ भी अनोखा है। भाषा के सौष्ठव से उर्दू-कविता भावों के भारी भार को वहन करने में काफ़ी समर्थ है।

ऐसी शक्ति ब्रजभाषा में भी है, पर खड़ीबोली में उसका अभीतक अभाव है। खड़ीबोली के कवियों को उर्दू के इस गुण पर सूक्ष्म दृष्टि डालनी चाहिये।

उर्दू-ज़बान और उसकी कविता के बारे में मुख्य-मुख्य बातों का संकलन इस पुस्तक में संक्षिप्त रूप में कर दिया गया है। आशा है, हिन्दी के नवागंतुक लेखक और कवि उनसे लाभ उठायेंगे।

इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की प्रार्थना मैंने अपने साहित्यिक मित्र तथा अपने देश के एक सुप्रसिद्ध विद्वान और कविता के प्रख्यात मर्मज्ञ पंडित अमरनाथ झा (वाइस चांसलर, इलाहाबाद युनिवर्सिटी) से की थी। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने अपने बहुमूल्य समय का एक अंश देकर प्रस्तावना लिख दी। हिन्दी-उर्दू के संबंध में यद्यपि उनके विचार मुझसे नहीं मिलते; पर वे एक पक्ष का जोरदार समर्थन करते हैं और मननीय हैं। इस पुस्तक में माननीय झा जी के विचारों का समावेश हो जाने से हमारे पाठकों को अपने विचारों की यथार्थता जाँचने में बड़ी सहायता मिलेगी।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

२०-१२-४०

}

रामनरेश त्रिपाठी

प्रस्तावना

हिन्दी-साहित्य का जब इतिहास लिखा जायगा तो उसमें पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी की विविध सेवाओं का बड़े मान के साथ उल्लेख होगा। न केवल उनकी कृतियों का उसमें वर्णन होगा, परन्तु उनके सम्पादित और प्रकाशित “कविता-कौमुदी” को एक विशेष स्थान दिया जायगा। इन पुस्तकों के द्वारा त्रिपाठीजी ने हिन्दी पढ़नेवालों को परिचय कराया है न केवल हिन्दी के काव्य से, परन्तु बँगला, उर्दू और संस्कृत के उत्कृष्ट काव्य के उदाहरणों से भी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उर्दू-भाषा और उसके काव्य का दिग्दर्शन कराया गया है। मैं आपके विचारों से बहुधा सहमत नहीं हूँ, फिर भी हिन्दी में उर्दू के विषय पर ऐसी सुन्दर पुस्तक मैंने नहीं देखी है। इसके पढ़ने से न केवल उर्दू-कविता का यथेष्ट ज्ञान हो जाता है, उसमें रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। हमारे देश में साहित्य और ललित-कला में तो कभी संकीर्णता थी ही नहीं। हम और भाषाओं से अभिज्ञ होने को उत्सुक रहते हैं, और भाषाओं पर आधिपत्य प्राप्त करने में अपना गौरव समझते हैं।

ऐतिहासिक और शब्द-वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्य चाहे कुछ भी हो, आज तो हिन्दी और उर्दू दो भिन्न भाषायें हैं। उर्दू के कवि इस देश के छन्दों में नहीं लिखते हैं। उर्दू-काव्य का समस्त वातावरण विदेशीय है—यहाँ तक कि हिन्दू जब उर्दू में कविता लिखता है तो अपने मज़ार और कब्र का जिक्र करता है, धोखे से भी ईश्वर का नाम नहीं लेता, हमेशा खुदा ही उसका ईश्वर है। सावित्री और सत्यवान, नल और दमयन्ती को भूलकर उनकी कविता में केवल शीरीं और फरहाद, यूसुफ़ और जुलेखा ही के नाम आया करते हैं। हिन्दू अपने को काफ़िर कहता

है, बुतपरस्त कहता है, और अपने देवताओं को बुत । उसका अरमान रहता है कि वह मुसलमान हो जाय । भारतवर्ष का, यहाँ की वस्तुओं का, यहाँ के इतिहास का, यहाँ की कथाओं का, यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का, वह कहीं नाम नहीं लेता है ।

शहर के रहनेवाले, मुगल-साम्राज्य के कार्य-कर्त्ता, और अदालतों से सम्पर्क रखनेवाले भले ही फ़ारसी और उर्दू का प्रयोग करते रहे हों, परन्तु किसी भी हिन्दू को यह अधिकार नहीं प्राप्त हुआ कि वह उर्दू-साहित्य का महारथी समझा जाय अथवा उसकी गणना उस्तादों में हो । ऐसी स्थिति में हम यह कैसे मान लें कि हिन्दी और उर्दू एक ही हैं ?

त्रिपाठीजी ने जो स्वयं इस पुस्तक में अनेक उदाहरण दिये हैं, उनमें हिन्दू-कवियों के कहे हुए कौन हैं ? मीर, सौदा, ग़ालिब, इन्शा, यही तो हैं ? जिन पाँच युगों के विधाताओं के नाम इस पुस्तक में हैं—वली, आबरू, यकरंग, आरजू, फुग़ाँ, सौदा, सोज़, दर्द, मीर, ज़ुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नासिख़, आतश, मोमिन, ज़ौक़, ग़ालिब, अमीर, अनीस, दबीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर, इक़बाल, चकबस्त — उनमें अन्तिम नाम चकबस्त एक हिन्दू का है । तीन सौ वर्षों के साहित्य के इतिहास में एक हिन्दू कवि ! सत्ताइस महाकवियों में एक !—यही है “मुश्तर्क़ ज़बान” की यथार्थता !

सच तो यह है कि उर्दू हिन्दुस्तान की भाषा होने ही नहीं पाई—न भाव में, न विषय में, न शब्द में । यह ईरान और अरब के साहित्य की एक शाखा-भाषा है । हम इसे पढ़ते हैं, हम इसका रसास्वादन करते हैं—अँग्रेज़ी को भी हम रुचि से पढ़ते हैं, हम में से कुछ फ़्रेंच और जर्मन भी पढ़ा करते हैं; परन्तु ये हमारी भाषायें तो नहीं हैं ?

अस्तु, हमें उर्दू से विरोध नहीं है—वह फूले, फले, उन्नति करे । परन्तु वह हिन्दी का केवल रूपान्तर है, यह मैं नहीं मानता ।

सूची

हिन्दी और उर्दू	१
हिन्दी और उसकी व्यापकता	३
क्या उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा है ?	८
विदेशी शब्दों का समावेश	१०
रेखता	१४
रेखती	१६
हिन्दुस्तानी	१६
राष्ट्र-भाषा	१८
लिपि	२१
उर्दू-पद्य	२१
उर्दू के युग—	२६
पहला युग	२६
दूसरा युग	२७
तीसरा युग	२८
चौथा युग	२९
पाँचवाँ युग	२९
उर्दू का छंद-शास्त्र	३०
गज़ल	३४
कसीदा	३६
मसनवी	३६

मरसिया	३६
रुवाई	३७
मुसल्लस	३७
मुखम्मस	३७
मुसदस	३८
तारीख	३८
शेर	३८
मिसरा	३८
मतला	३८
मक्रता	३८
काफ़िया	४०
रदीफ	४०
तख़ल्लुस	४०
मशायरा	४१
उर्दू-कविता	४४
उर्दू-कविता में वर्णित मुख्य विषय	४६
आशिक के विशेषण	४६
माशूक के विशेषण	४६
आशिक के काम	४६
माशूक के काम	५०
माशूक का नखशिख	५०
बाग़	५०
सहरा	५०
दरिया	५१
महफ़िल	५१
ग़म	५१

(३)

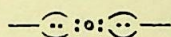
आसमान	५१
खिन्न	५१
शैतान	५२
विरहमन	५२
शेख	५२
फरहाद और शीरी	५३
मन्सूर	५३
कैस या मजनूँ और लैला	५४
यूसुफ़ और जुलेखा	५४
ज़ाहिद	५५
वाइज़ या नासेह	५५
बुत	५५
शराब	५६
हूर या परी	५६
क्रातिल	५६
क्रयामत	५७
काफ़िर	५७
उपनाम	५८
भाव-प्रदर्शन में विशेषता	५८
अतिशयोक्तियाँ	६०
रस	६५
इश्क	६५
उर्दू-कविता का प्रभाव	६५
माशूक की असली सूरत	६७
उर्दू-कविता का समाज पर प्रभाव	७०
मियाँ चिरक़ी	७६

(४)

जाफ़र जटल	७७
युग-परिवर्तन	८०
उद्-गद्य	८२

उर्दू-ज़बान का संक्षिप्त इतिहास

उर्दू-ज़बान का संक्षिप्त इतिहास



हिन्दी और उर्दू

हिन्दी, जिसे आजकल हम लोग बोलते और लिखते हैं, और जिसे कुछ लोग खड़ीबोली और कुछ लोग उर्दू कहते हैं, उतनी ही प्राचीन है, जितनी ब्रजभाषा। ब्रजभाषा ने ब्रज में विकास पाया और हिन्दी पहले-पहल दिल्ली और उसके आसपास तक ही फैलकर रह गई थी।

हिन्दुओं का एक समय वह भी था, जब उनका राज्य पश्चिम और उत्तर में ईरान, अरब, रूम, तुर्किस्तान और मंगोलिया तक फैला हुआ था। पश्चिमोत्तर देशवालों के साथ भारतवासियों का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से है। ईरान वालों के साथ तो आर्यों का विवाह-सम्बन्ध तक पाया जाता है। ऐसी दशा में प्रत्येक देश का निवासी दूसरे की भाषायें भी सोखता होगा; या दोनों देशों की भाषा एक ही रही होगी, इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

महाभारत में जहाँ युधिष्ठिर के लाक्षा-गृह जाने का वर्णन है, वहाँ यह भी लिखा है कि विदुर ने उनको लाक्षा-गृह की बनावट के विषय में श्लेच्छ-भाषा में कुछ सूचनायें दी थीं। उस कथा से श्लेच्छ-भाषा का अस्तित्व ही नहीं, बल्कि यह भी प्रमाणित होता है कि विदुर और युधिष्ठिर दोनों श्लेच्छ-भाषा जानते थे।

महाभारत के बाद विदेशियों के, खासकर पश्चिमवालों के, कई आक्रमण भारत पर हुये, और कई जातियों ने यहाँ आ-आकर राज किया। उनके साथ उनकी भाषा के शब्द भी आये होंगे, जो उस समय की प्रचलित भाषा में मिल गये होंगे। इन्हीं का 'दुब्' शब्द देहात में

अबतक प्रचलित है—‘क्या हुन्न बरस रहा है ?’ ‘भूषण’ भी इस शब्द का प्रयोग करते हैं :—

‘पीरी पीरी हुन्न तुम देत हौ मँगाय हमें’

कालिदास के समय में यवनी स्त्रियाँ अन्तःपुर में पहरा दिया करती थीं। यह इस बात का बड़ा प्रमाण है कि विदेशियों पर हिन्दू-लोग स्वदेश-वासियों के समान ही विश्वास करते थे। जब इतना घनिष्ठ संसर्ग था, तो क्या उन विदेशियों की मातृ-भाषा के शब्द यहाँ नहीं फैले होंगे ? क्या यहाँ मुसलमानी हुक्मत होने के पहले ही यहाँ की प्रचलित भाषा में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के हज़ारों शब्द न आ घुसे होंगे ?

चन्द बरदाई की कविता में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के सैकड़ों शब्द मौजूद हैं। अतएव यह कहना कि शाहजहाँ के वक्त में, लश्कर के बाज़ार में उर्दू-भाषा बनी, एक ग़लत अनुमान है। भाषा पहले ही से थी। लोग उसे बोलते थे और लिखते थे। बाद में न जाने किसने और कब उस भाषा का नाम उर्दू रख लिया।

मुसलमान आक्रमणकारियों के लश्कर में उर्दू बाज़ार लगता था। वहाँ जो बाज़ार हिन्दी बोली जाती थी, उसीका नाम उर्दू बोली पड़ गया बताते हैं। पर उर्दू-बाज़ार तो मुहम्मद ग़ोरी के गुलाम कुतुबुद्दीन के समय ही से लगता रहा होगा। उस समय भी तो उर्दू-बाज़ार की कोई बोली रही होगी। क्या वह उर्दू न रही होगी ? फिर यह कैसे माना जाय कि उर्दू शाहजहाँ के वक्त में बनी ?

तुलसीदास ने शाहजहाँ की दो पीढ़ी पहले उर्दू के एक महावरे का प्रयोग इस प्रकार किया है :—

बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको ।

अर्थात् अयोध्या का मूर्ख निवासी खाक भी नहीं समझता। ‘खाक नहीं समझता।’ पर ध्यान दीजिये, यह संस्कृत से नहीं आया और बोलचाल में यह इतना प्रचलित हो गया था कि तुलसीदास जैसे

(३)

हिन्दू-संस्कृति के पक्षपाती संत ने भी इसका प्रयोग कर लिया । अतएव यह मानना पड़ेगा कि तुलसीदास के समय में उर्दू का रूप स्थिर हो चुका था, और वह सर्वसाधारण में बोली जाने लगी थी, तभी तो उन्होंने उसके महावरे का इस्तेमाल बिना किसी हिचक के कर लिया ।

हिन्दी और उस की व्यापकता

हिन्द की भाषा के लिये हिन्दी नाम मुसलमान इतिहासकारों के ग्रन्थों में भी मिलता है ।

बुजुर्ग बिन शहरयार (अरब) की लिखी किताब 'अजायबुल हिन्द' के सफ़ा २ और ३ पर लिखा है कि 'अब्दुल्ला पुराकी ने हिन्द के राजा अल्लूरा के लिये सन् २७० हिजरी (ई० सन् ८७० के लगभग) में कुरान का हिन्दी ज़बान में तर्जुमा किया ।'

कालिंजर के राजा नंदा ने सन् ४१३ हिजरी (ई० सन् १०१३ के लगभग) में सुलतान महमूद की शान में हिन्दी में शेर लिखकर भेजा:—

“नन्दा बज़बान हिन्दी दर मदः सुलतान शायरी गुप्तः निज्दा व फरिस्ताद सुलतान औरा बफजलाय हिन्द व अरब व अजम कि दर मुला-ज़िमत अवबूदंद नमूदः हमगी तहसीन व आफ़रीं करदंद ।”^१

इससे साफ़ जाहिर है कि सुलतान महमूद के दरबार में हिन्दी अच्छी तरह समझी जाती थी और उसका रस लिया जाता था । और यहाँ वह हिन्दी ज़बान के नाम ही से मशहूर थी ।

मुसलमान आक्रमणकारी अक्सर हिन्दुस्तान से गुलाम पकड़कर ले जाते थे और उन्हें अपने मुल्क में बसा लेते थे । उनके साथ हिन्दी-भाषा

१. तवारीख़ फ़रिस्ता, सफ़ा ३१, जिल्द अब्बल, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में मुद्रित ।

भी जाती थी और सौदा-सुलत के जरिये मुसलमानी घरों में पहुँच जाती थी ।

इसके सिवा मुसलमान बादशाहों को विद्वानों की सुहबत का भी बड़ा शौक था । वे हिन्दुस्तान के विद्वानों को अपने दरबार में बुलाकर उन्हें इज्जत के साथ रखते थे और उनकी भाषा में, जो हिन्दी होती थी, उनके विचारों को सुनते और समझते थे ।

मुलतान महमूद के दरबार में तिलक नाम का एक हिन्दू, जो शीराज में रहकर फ़ारसी भी जान गया था, हिन्दुओं के साथ खत-किताबत और आये-गये के स्वागत-सत्कार के लिये नौकर था ।^१

हिन्दी का प्रचार हिन्दुस्तानी मल्लाहों के जरिये, जो हिन्दुस्तानी जहाज़ों पर काम करते थे और अब भी करते हैं, अफ़रीका, एराक, मिश्र, अदन, जिद्दा, पोर्ट सईद और पोर्ट सूडान तक पहुँच गया । बाहरी मुल्कों की सैर करनेवालों से मालूम होता है कि उनको हरएक बन्दरगाह पर, जहाँ हिन्दुस्तानी जहाज़ों की आमद-रफ़्त होती है, हिन्दी बोलनेवाले मल्लाह और दूकानदार मिल जाते हैं ।

मुसलमानों के पुराने इतिहास से लेकर आजकल के अपढ़ हिन्दुस्तानी की ज़बान तक हमारी भाषा का नाम हिन्दी ही मिलता है, और यह नाम मुसलमानों ही का रक्खा हुआ है । हिन्दू लोग तो इसे भाषा कहते थे और संस्कृत के पंडित अब भी कहते हैं ।

साधारण मुसलमानों की तो बात ही क्या, मुग़ल बादशाह तक संस्कृत और हिन्दी से अनुराग रखते थे । अकबर के रचे हुये हिन्दी में कई छंद मिलते हैं ।

औरज़जेब, जो मज़हबी कट्टरता के लिये प्रसिद्ध है, संस्कृत और हिन्दी से परिचय रखता था । भूषण की हिन्दी कविताएँ उसने सुनी

(५)

और समझी थीं, यह तो प्रसिद्ध ही है। आश्चर्य तो इस बात का है कि वह संस्कृत में भी दखल रखता था।

उसके पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, उसमें नं० ८ का खूब उसने अपने बेटे मुहम्मद आजमशाह के नाम लिखा था। मुहम्मद आजमशाह ने कुछ नये किस्म के आमों की डाली बादशाह की खिदमत में भेजी थी, और उन आमों के नाम रख देने की प्रार्थना की थी। बादशाह ने लिखा—

“फर्जान्द आलीजाह, डाली अम्बा मुसले आँ बजायके पिदर पीर खुशगवार आमद—बराय नाम अम्बए गुमनाम इस्तदुआ नमूदा अन्द—चूँ आँ फर्जान्द जूदते तबा दारन्द—रवादार तकलीफे, पिदरपीर चरा मी शवन्द—बहरहाल सुधारस वो रसना विलास नामीदा शुद”।

अर्थात्, बेटा ! आमों की डाली जो तुमने भेजी, वह तुम्हारे बुद्धे बाप को बहुत पसंद आई; तुमने इन गुमनाम आमों के नाम रखने के लिये लिखा; तुम तो बेटा ! खुद प्रतिभावान हो; बुद्धे बाप को क्यों तकलीफ देते हो। खैर; सुधारस और रसना-विलास नाम रख दिया जाता है।

आमों के लिये सुधारस और रसना-विलास नाम बादशाह औरङ्गजेब की सरस हृदयता के परिचायक हैं।

हिन्दी में सबसे पहली कविता अमीर खुसरो की मिलती है। यहाँ उसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१)

तरवर से यक तिरिया उतरी उसने बहुत रिक्काया ।

बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया ॥

(२)

बीसों का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ॥

(६)

(३)

बात की बात ठठोली की ठठोली ।

मरद की गौंठ औरत ने खोली ॥

‘उसने बहुत रिक्काया’ ‘आधा नाम बताया’ ‘बीसों का सिर काट लिया’ ‘औरत ने खोली’ आदि आजकल की हिन्दी के शुद्ध वाक्य हैं । “ने” का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है ।

अमीर खुसरो का जन्म सं० १३१२ में और मरण सं० १३८२ में हुआ । उसने जो छन्द लिखे हैं, उनकी भाषा अवश्य ही उस समय की बोलचाल की होगी । क्योंकि उसके विषय ही ऐसे हैं, जो रोज़मर्रा की बोलचाल ही में लिखे जाने चाहियें ।

खुसरो ही ने पहले-पहल इस भाषा का नाम हिन्दी कहा है । जैसे—

शर्मों हया दर हिन्दी लाज ।

हासिल कहिये बाज़ खिराज ॥

खुसरो ने कहीं-कहीं भाषा का नाम ‘हिन्दवी’ भी लिखा है । जैसे—

बिश्नो तो नाम चरखा बेचारा पीरज़न ।

गोयन्द नाम रहटा दर हिन्दवी बचन ॥

मुश्क काफ़ूरस्त कस्तूरी कपूर ।

हिन्दवी आनन्द शादी ओ सरूर ॥

खुसरो के बाद कबीर हुये कबीर ने भी खुसरो की हिन्दी में कुछ रखते कहे हैं । कबीर सं० १४५५ में हुये उस समय की हिन्दी का उनका एक पद्य सुनिये —

हमन है इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या ?

रहें आज़ाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या ?

जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते ।

हमारा यार है हम में हमन को इन्तज़ारी क्या ?

(७)

न पल बिछुड़े पिया हम से न हम बिछुड़ें पियारे से ।
 उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ?
 कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिल से ।
 जो चलना राह नाज़ुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ?

अमीर खुसरो की तरह मलिक मुहम्मद जायसी भी, जिनको हुये साढ़े चार सौ वर्ष के लगभग हुये, इस भाषा का नाम हिन्दी और हिन्दुई ही कहते थे । एक उदाहरण लीजिये :—

तुरकी अरबी हिन्दुई, भाषा जेती आहि ।
 जेहि महुँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि ॥

पद्मावत

अभी सौ वर्ष भी नहीं हुये, उर्दू के मशहूर शायर आतिश ने भी इसे हिन्दी ज़बान ही कहा है :—

मतलब की मेरे यार न समझे तो क्या अजब ।
 सब जानते हैं तुर्क की हिन्दी ज़र्बाँ नहीं ।

इन अवतरणों से यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि जिस भाषा को आजकल खड़ीबोली या हिन्दी कहा जाता है, यह खुसरो, कबीर और जायसी के समय में भी लगभग इसी रूप में वर्तमान थी । अन्तर पड़ा है तो केवल कुछ महावरों और कुछ विदेशी शब्दों के मिश्रण का ।

मुसलमानी राजत्व-काल में यद्यपि फ़ारसी का चलन था, पर वह राजभाषा थी; राष्ट्रभाषा का काम उस समय भी हिन्दी ही से लिया जाता रहा है । शिवाजी और भूषण का सम्बन्ध हमको विदित है । शिवाजी दक्षिणी होने पर भी इतनी हिन्दी जानते थे कि भूषण की कविता समझ लेते थे ।

उत्तर भारत से जितने मुसलमान दक्षिण गये, वे सब अपनी ज़बान भी गोलकुंडा और बीजापुर तक साथ ले गये, जो हिन्दी थी; जैसा कि उस समय के मुसलमान कवियों ने कहा है । आज भी मद्रास में जितने

मुसलमान हैं, उनमें अधिकांश दिल्ली की पुरानी ज़बान से वाक्फ़ि हैं, जिसे उनके पुरखे दक्षिण ले गये थे। मैं दो-तीन बार दक्षिण भारत का भ्रमण कर आया हूँ। मेरा निजी अनुभव है कि जहाँ-जहाँ भाषा की कठिनाई मेरे सामने आई, रास्ते में मिलनेवाले मुसलमानों ने उसे हल किया। हम देखते हैं कि इस प्रकार हिन्दी के प्रचार में मुसलमानों ने बड़ी सहायता पहुँचाई है।

चारों धामों की यात्रा को हिन्दुओं के लिये जिसने अनिवार्य धार्मिक रूप दिया, उसने भी चारों धामों के अन्दर के देश को एक राष्ट्र बनाने में चुपचाप मदद की है। इससे परस्पर परिचय ही नहीं बढ़ता था, भाषा का प्रवेश भी भिन्न प्रांतवालों में होता रहता था। राम और कृष्ण का प्रांत होने के कारण अन्य प्रांतों से युक्तप्रांत में आनेवाले तीर्थ-यात्रियों की संख्या अधिक रहती है; इससे वे यहाँ की बोलचाल से भी जानकार होते रहते हैं। इसी प्रकार उत्तर भारत के यात्रियों ने दक्षिण भारत के तीर्थ-स्थानों में घूमकर हिन्दी-भाषा फैला दी है, जिसका प्रमाण दक्षिण भारत के प्रत्येक तीर्थ-स्थान में मिलता है।

इस प्रकार हिन्दी लगभग छः सौ वर्षों से मुसलमानों-द्वारा और एक अनिश्चित काल से हिन्दू तीर्थ-यात्रियों-द्वारा भारत के कोने-कोने में अपना घर बनाती रही और अपने लिये राष्ट्रभाषा होने का रास्ता साफ़ करती रही।

क्या उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा है ?

खुसरो और कबीर की कविता के उदाहरणों के रहते हुये “आबेहयात” के लेखक स्व० प्रो० आज़ाद का यह लिखना कि ‘हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है’ बिल्कुल ग़लत है। उर्दू कभी किसी भाषा से निकली ही नहीं। हिन्दी ही का नाम उर्दू रख लिया गया है। उसका नाम उर्दू न रखकर ‘मुसलमानी हिन्दी’ रक्खा जाता, तो अधिक सार्थक होता।

(६)

हर एक ज़बान तीन तरह के लफ्जों से बनती है—संज्ञा (इस्म), क्रिया (फ़ेल) और अव्यय (हर्फ) । उर्दू में क्रियायें सब हिन्दी की हैं । हर्फ एक-दो को छोड़कर सब हिन्दी ही हैं । हाँ, संज्ञा में हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, तुर्की और यहाँ तक कि अंग्रेज़ी, पुर्तगाली और फ़्रांसीसी शब्द भी मिले हुये हैं । अतएव केवल संज्ञा शब्दों के आधार पर कोई भाषा नई नहीं कही जा सकती ।

और उर्दू शब्द का अर्थ भी लश्कर का बाज़ार है । केवल उर्दू लफ्ज़ से किसी भाषा-विशेष का बोध नहीं होता । उर्दू के मशहूर शायर मीर तक इसको ज़बाने-उर्दू यानी लश्कर के बाज़ार की बोली कहते थे । देखिये:—

रेखता कि शेरस्त बतौर शेर फ़ारसी बज़बाने उर्दू-ए-मुअल्ला बाद-शाहे हिन्दोस्तान । (ज़िक्रे मीर, सफ़ा ६३)

ऐसे तो आजकल कालेज और युनिवर्सिटियों में जो हिन्दी बोली जाती है, उसमें आधे के करीब अंग्रेज़ी के संज्ञा शब्द होते हैं । क्या उसका एक नया नाम रखना मुनासिब होगा ?

ज़रा ग़ौर कीजिये, उर्दू-फ़ारसी पढ़ा हुआ एक मुसलमान अगर बोलता है—

‘मैं कलकत्ते से रवाना हुआ और जुमा को सबरे की गाड़ी से इलाहाबाद पहुँच गया । मरीज़ को देखा, उसके जीने की उम्मीद नहीं ।’

और इसी को एक ग्रेजुएट, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इस तरह बोलता है—

‘मैं कलकटा से चला । फ़ाइडे को मार्निंग ट्रेन से इलाहाबाड पहुँचा । पेशट को देखा, वह होपलेस कंडीशन में है ।’

यदि उक्त मुसलमान की भाषा का एक अलग नाम उर्दू रखा जायगा तो उस ग्रेजुएट की भाषा का क्या नाम होगा ? हम तो दोनों को हिन्दी कहेंगे । कोई अधिक बाल की खाल खींचने को कहेगा तो

हम पहली को मुसलमानी हिन्दी और दूसरी को अंग्रेज़ी हिन्दी कहेंगे । पर हिन्दी से अलग हम उसे तबतक न मानेंगे, जबतक उसकी क्रिया, कारक, लिंग और वचन भिन्न न होंगे ।

जब हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक है, तब उर्दू अलग स्वतंत्र भाषा कैसे कहला सकती है ?

हिन्दी और उर्दू में सिर्फ़ इतनाही अन्तर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और उसमें संस्कृत के शब्द अधिक रहते हैं, और उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों की अधिकता रहती है ।

गुजराती भाषा के भी दो रूप हैं—एक पारसियों की गुजराती और दूसरा नागर ब्राह्मणों की गुजराती । पारसियों की गुजराती में अरबी, फ़ारसी के शब्द अधिक रहते हैं और नागर ब्राह्मण की गुजराती में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द । पर दोनों रूपों का नाम एक है । यही हिन्दी में भी होना चाहिये । पर दुर्भाग्य से उर्दू एक अलग ज़बान फ़ारसी दी गई है, और हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े का वह भी एक कारण बना दी गई है ।

विदेशी शब्दों का समावेश

मुसलमानों का शासन होने से उनकी बोलचाल के कुछ अधिक शब्द हिन्दी में मिल गये, और वे धीरे-धीरे शहर से लेकर गाँव तक फैल गये और सर्व-साधारण के घरों में पहुँच गये । जो-जो चीज़ें मुसलमानी मुल्कों से यहाँ आईं उनके नाम तो ज्यों के त्यों रह गये । जैसे—

पायजामा, इज़ारबन्द, रुमाल, शाल, दुशाला, बुर्का, चोगा, कुर्ता, क़बा, आस्तीन, गरेवाँ, चपाती, पुलाव, ज़र्दा, क़बाब, कुर्मा, अचार, गुलाब, मुश्कबेद, रकाबी, तश्तरी, चमचा, हम्माम, साबुन, शीशा, शमा, शमादान, फ़ानूस, तनूर, मशक, नमाज़, रोज़ा, ईद, शबरात, क़ाज़ी, साक़ी, हुक्का, नैचा, चिलम, बन्दूक, गंजीफ़ा इत्यादि ।

यहाँ की बहुत-सी चीज़ों के अरबी-फ़ारसी भाषा के ऐसे नाम पड़ गये कि यदि अब उनके स्थान पर संस्कृत या प्राकृत के पर्यायवाची शब्द ढूँढ़कर रखे जायें तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा; या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्व-साधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी उसे कठिनता से समझ सकेंगे। जैसे—

पिस्ता, बादाम, मुनक्का, शहतूत, बेदाना, ख़ुबानी, अंजीर, सेब, चिही, नासपाती, अनार, मज़दूर, वकील, जल्लाद, सर्राफ़, मसख़रा, लिहाफ़, तोशक, चादर, शकल, चेहरा, तबीअत, मिज़ाज, बरफ़, कबूतर, कुमरी, बुलबुल, तोता, पर, दवात, कलम, स्याही, गुलाब, हुक्का, ऐनक, सन्दूक, कुर्सी, तख़्त, लगाम, रिकाब, ज़ीन, तंग, नाल, कोतल, जहाज़, मस्तूल, बादबान, तुहमत, पर्दा, दालान, तहख़ाना, तनख़्वाह, मल्लाह, ताज़ा, ग़लत, सही, रसीद, रसद, कारीगर, तराजू इत्यादि।

शतरंज खास हिन्दुस्तान की चीज़ है। पर अब इसके असली नाम “चतुरंग” से शायद ही कुछ लोग परिचित हों। इसी तरह अब ‘पाटल’ के स्थान पर ‘गुलाब’ ने कब्ज़ा कर लिया है।

यहाँ विदेशी भाषा के कुछ ऐसे शब्द दिये जाते हैं जो यहाँ की बोलचाल में आकर मिल गये हैं, और अब यहीं की सम्पत्ति हो गये हैं। जैसे—

अरबी—अक़, इस्तियार, इम्तिहान, एतराज़, औरत, हाल, सिक़ा-रिश, अदालत, मुक़दमा, तारीख़, तनख़्वाह, हूबहू, इन्साफ़, इन्सान, ऐब, उम्दा, ख़बर, ख़र्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मशगूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि।

फ़ारसी—आज़मायश, आदमी, उम्मीदवार, आबादी, ख़रीद, गुमाश्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाकू, ताज़गी, गुज़रान, तन्दुरुस्ती, दस्तावेज़, दरिया, प्याला, कमर, दाग़, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हज़ार आदि।

तुर्की—तोप, लाश, कोतल, कुरता आदि।

पोर्चुगीज़—अङ्गरेज़, पिस्तौल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इज़ीनियर, चा, काफ़ी, गोदाम, चाबी आदि ।

अङ्गरेज़ी—कोर्ट, अपील, टिकट, कलक्टर, डाक्टर, टेबिल, पेंसल, पेंशन, वूट, फ़ार्म, बोर्डिंग, डिग्री, ग्लास, फंड, रेल, वारंट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इञ्च, फुट, वास्कर, म्युनिसिपैलिटी, सेविंग्स-बैंक, सोडावाटर, होटल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिष्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फ़ीस, स्लेट, टिन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, कांस्टेबल, वोटर, कौंसिल, एसेम्बली, मीटिंग, मेम्बर, फैमिली, स्प्रिट, बाइसिकल, ट्रैन, लाइन, बटन, कोट, हैट, निब इत्यादि ।

एक बड़ी दिलचस्प बात यह है कि विदेशी शब्दों को विवश होकर हिन्दी-व्याकरण के साँचे में ढल जाना पड़ा है । हिन्दी-व्याकरण ने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया है और वे अरब, ईरानी और तुर्क बेधड़क हिन्दू हो गये । कुछ उदाहरण लीजिये—

प्रायः सभी शब्दों का बहुवचन हिन्दी-व्याकरण के नियमानुसार है । जैसे—

मेवा.	का	मेवों	न	कि	मेवाजात ।
निशान	का	निशानों	न	कि	निशानात ।
मुश्किल	का	मुश्किलों	न	कि	मुश्किलात ।
दफ़ा	का	दफ़ाओं	न	कि	दफ़ात ।
औरत	का	औरतों	न	कि	मस्तूरात ।
मज़दूर	का	मज़दूरों	न	कि	मज़दूरान ।
ख़बर	का	ख़बरें, ख़बरों	न	कि	अख़बार ।
डाक्टर	का	डाक्टरों	न	कि	डाक्टर्स ।
होटल	का	होटलों	न	कि	होटल्स । इत्यादि

अब कुछ लोग उर्दू में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के असली बहुवचन लिखने का प्रयत्न करने लगे हैं । जैसे, किस्म का बहुवचन अक़साम;

(१३)

तरफ़ का बहुवचन अतराफ़; इत्यादि । ऐसा करके वे भाषा को और भी जटिल बना रहे हैं, और उसकी सीमा संकुचित कर रहे हैं । मामूली बोलचाल में उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा ।

फ़ारसी शब्दों से बहुत-सी क्रियायें भी हिन्दी के ढंग पर बन गई हैं । जैसे—

शरम से शरमाना
गुज़र से गुज़रना
फ़रमान से फ़रमाना
क्रबूल से क्रबूलना
बदल से बदलना
बद़श से बद़शाना
काहिली से कहलाना
मुनकिर से मुकरना
ख़र्च से ख़र्चना इत्यादि;

कुछ क्रियायें करना, होना आदि शब्दों के योग से बन गई हैं । जैसे—

ख़ुश होना, ज़िक्र करना, ख़ाना होना, दिल लगाना; इत्यादि ।

कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका धड़ तो हिन्दुस्तानी है, और सिर फ़ारसी । जैसे—

समझदार, गाड़ीख़ाना, पीकदान, पानदान, हाथीवान, मोदीख़ाना ।
कुछ ऐसे पर्यायवाची शब्द हैं जो साथ-साथ बोले जाते हैं । जैसे—
क्रागज़-पत्र, शादी-ब्याह, धन-दौलत, जमा-पूँजी आदि ।

कुछ शब्द अपने असली रूप को छोड़कर बिलकुल नये सॉंचे में ढल गये हैं । जैसे, जमघट । यह 'जमा' (फ़ारसी) और घाट (संस्कृत) का सम्मेलन है । नदी के घाट पर उतारे के समय जब बढ़ी भीड़ हो जाती है, तब यह शब्द बना होगा ।

क्रिया, कारक, लिंग, वचन, सर्वनाम और अव्यय के एक रहते हुये कोई भाषा थोड़े से विदेशी शब्दों के मेल से दो नामों से नहीं पुकारी जा सकती। एक पुस्तक (संस्कृत) लाओ, एक किताब (फ़ारसी) लाओ, एक चोपड़ी (गुजराती) लाओ, एक बुक (अङ्गरेज़ी) लाओ, एक पोथी (अपभ्रंश) लाओ, एक ही अर्थ देनेवाले ये पाँच वाक्य पाँच रूपों में हैं, पर क्रिया सबकी एक है। अतएव केवल संज्ञा के बदलते रहने से ये वाक्य पाँच भाषाओं के नहीं कहे जा सकते। इसी तरह हिन्दी में केवल अरबी-फ़ारसी के कुछ संज्ञा शब्दों के आ जाने से उर्दू एक नई भाषा नहीं मानी जा सकती।

मुसलमानों को चाहिये कि वे हिन्दी को अपनी मातृ-भाषा समझें और हिन्दुओं को उचित है कि वे अरबी, फ़ारसी और तुर्की के उन सब शब्दों को, जो हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित हैं, अपनी भाषा में ले लें, जिससे दोनों की एक भाषा हो जाय और हिन्दू-मुसलमानों में एक देश-वासी होने के साथ-साथ एक भाषा-भाषी होने का भी बन्धुत्व कायम हो।

रेखता

उर्दू नाम पढ़ने से पहले फ़ारसी छन्दों में जो कविता उस समय की बोलचाल में लिखी जाती थी, उस बोलचाल का नाम रेखता था। रेखता शब्द का अर्थ है—गिरा-पड़ा या परेशान। उस समय अरबी-फ़ारसी के बहुत से शब्द यहाँ की बोलचाल में लावारिस की तरह परेशान घूम रहे थे। उन्हीं को बोलचाल की भाषा में जगह दे दी गई। इसीसे उस बोलचाल का नाम रेखता हो गया।

यह नाम कब और कहाँ पड़ा? इसका पता नहीं। जब मुसलमानी हुकूमत दक्खिन में फैल गई, उस समय मुसलमानों का जो दल दक्खिन गया, उसी के साथ हिन्दी भी वहाँ गई। उस हिन्दी में अरबी-फ़ारसी के शब्द तो भरे थे ही, कुछ दक्खिनी शब्दों को भी उसमें मिलाकर कुछ शायरों ने दिमाग लड़ाया।

(१५)

सं० १३६३ में मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली को उजाड़कर दक्खिन में दौलताबाद बसाया । पर वह बस न सका और दिल्ली से गये हुये लोग फिर वापस आये । उन्हीं के साथ बहुत से दक्खिनी शब्द भी दिल्ली की बोलचाल में आ गये । वली के बाद के उर्दू-कवियों की कविताओं में दक्खिनी शब्दों की खासी बहार देखने को मिलती है ।

सं० १७७७ में वली का दीवान दक्खिन से दिल्ली आया । उस समय मुहम्मदशाह का ज़माना था । वली की शायरी से उत्साहित होकर दिल्ली-वालों ने शायरी शुरू की; पर उनकी भाषा का नाम बहुत दिनों तक रेखता ही रहा । मीर साहब कहते हैं—

खूगर नहीं हम यों ही कुछ रेखता-गोई के ।

माशूक़ था जो अपना बाशिन्दः दकन का था ॥

सौदा कहते हैं—

शेर बेमानी से तो बेहतर है कहना रेखता ।

गालिब का एक शेर है—

रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब ।

कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था ॥

रेखता शब्द पर हमें इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि कबीर को यह शब्द कहाँ से मिल गया । कबीर ने रेखता नाम का एक छन्द लिखा है, जिसकी भाषा भी रेखता से मिलती-जुलती है । एक छन्द नमूने के लिये यहाँ दिया जाता है—

फ़हम कर फ़हम कर फ़हम कर मान यह, फ़हम बिन फिकिर नहि मिटै तेरी ।
सकल उँजियार दीदार दिल बीच है, जौक़ औ शौक़ सब मौज तेरी ॥
बोलता मस्त मस्ताने महबूब है, इनों सा अदल कहु कौन केरी ।
एक ही नूर दरियाव वह देखिये, फैल वह रहा सब सृष्टि में रेरी ॥

अतएव कबीर ही को रेखता का आदि-कवि क्यों न माना जाय ?

(१६)

रेखती

रेखती सआदतयार खाँ 'रंगी' की ईजाद है । यह जनानी बोली है ।
'रंगी' के बाद इंशा ने इसमें कुछ कलम चलाई और जान साहब ने तो
जीवान ही बना डाला ।

'रंगी' की रेखती का नमूना यह है:—

मैं वह भी ओढ़ने की नहीं कल की ओढ़नी ।
बाजी मुझे मँगा दो फलाफल की ओढ़नी ॥

जरा घर को 'रंगी' के तहकीक़ कर लो ।
यहाँ से है कै पैसे डोली कहाँ ॥

इंशा की जनानी बोली सुनिये—

मरदुआ मुझसे कहे है चलो आराम करें ।
जिसको आराम वो समझे है वो आराम हो नौज ॥
नहीं सनकार लिया तू ने तो फिर इंशा ने ।
मेरे दरवाज़े की क्यों चूल उखेड़ी अन्ना ॥

जान साहब फ़रमाते हैं—

नमाज़ पढ़-पढ़ के तो गुनाहों से अपने तोबा बुआ किया कर ।
न जान हिन्दू प दे दोगान: खुदा .खुदा कर .खुदा .खुदा कर ॥
निकाही ब्याही को छोड़ बैठे मताई रंडी को घर में डाला ।
बनाया साहब इमामबाड़ा .खुदा की मसजिद को तुमने ढाकर ॥

हिन्दुस्तानी

हिन्दी का एक नाम हिन्दुस्तानी भी है । यह अंग्रेज़ी हुकूमत की
उपज है । सन् १८०३ ई० में कलकत्ते के फोर्ट विलियम में एक महकमा
कायम हुआ था जो ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के कर्मचारियों को देशी भाषा

(१७)

लिखाने की व्यवस्था करता था। डाक्टर जान गिलक्रिस्ट साहब उसकी देखरेख के लिये तैनात हुये थे।

उस महकमे के द्वारा हिन्दी-उर्दू में हिंदू-मुसलमान विद्वानों से पुस्तकें लिखवाई गईं। हिन्दी की पुस्तकें पंडित सदल मिश्र और लल्लूजीलाल ने लिखीं और उर्दू की किताबें मीर अम्मन देहलवी आदि कुछ मुसलमान लेखकों ने। उसी समय से सरकारी मुहर इस नाम पर लगी।

गिलक्रिस्ट साहब ने स्वयं सोलह पुस्तकें लिखीं, जिनकी भाषा 'हिन्दुस्तानी' करार दी गई है। इस साहबी हिन्दी पर राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द ने अपनी कलई चढ़ाई और उसमें उन्होंने कुछ पुस्तकें और लेख लिखे।

फ्रेडरिक पिकाट साहब ने १ जनवरी, १८८४ को भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम हिन्दी में एक पत्र लिखा था, उससे राजा शिवप्रसाद और तत्कालीन अंग्रेजों की मनोवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पत्र का कुछ अंश यहाँ दिया जाता है :—

१ जनवरी, १८८४

प्रिय बंधो,

आप से एक पत्र मिलना मुझे परम सुख है। राजा शिवप्रसाद बड़ा चतुर है। बीस बरस हुये उसने सोचा कि अंग्रेजी साहबों को कैसी-कैसी बातें अच्छी लगती हैं।.....इसलिये उसने बड़े चाव से अपनी हिन्दी भाषा को बिना लाज छोड़कर उर्दू के प्रचलित करने में बहुत उद्योग किया। उसके उपरांत उसने देखा कि हिन्दी-भाषा साल पर साल पूज्यतर होती जाती थी तब उसने उर्दू और हिन्दी के परस्पर मिलाने का उद्योग किया। अंग्रेज लोग जानते हैं कि उन दो भाषाओं का मिश्रित होना सबसे श्रेष्ठ बात होगी; क्योंकि वैसी संयुक्ता से सारे हिन्दुस्तान के लिये एक ही भाषा निकलेगी।

X

X

X

(१८)

अंग्रेज़ लोग करने पर हृदय लगाते हैं। इससे यदि आप काव्य को छोड़कर किसी क्रिया-सम्बन्धी प्रसंग लगेँ सरल हिन्दी गद्य रचना पर अपना मन लगावें तो शिवप्रसाद के पद से आप आगे बढ़ेंगे।

आप का परम मित्र

फ्रेडरिक पिकाट

इस पत्र से इस बात का भी पता चलता है कि सन् १८८४ तक अंग्रेज़ों की नीयत या नीति यही थी कि हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा बनाकर अपना राजकाज चलावें। इसीसे हिन्दी-उर्दू को एक करने की धुन उनमें थी। पर अब दृष्टिकोण बदल गया है। अब तो अंग्रेज़ी सरकार हिन्दी-उर्दू की अलग-अलग उन्नति करने के लिये काफ़ी रुपये खर्च करती है। मानो उसने हिन्दी और उर्दूवालों की गरदनें घुमा दीं; एक का मुँह पूरब को कर दिया, दूसरे का पश्चिम को। दोनों चल तो रहे हैं; पर हरएक क्रंदम पर वे एक दूसरे से दूर चले जा रहे हैं।

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी एक ही भाषा के तीन नाम हैं, और तीनों का नाम हिन्दी है, जिसका अर्थ है हिन्दुस्तान की भाषा। हिन्दुस्तानी शब्द का भी यही अर्थ है।

राष्ट्र-भाषा

हिन्दुस्तानी का मुख्य लक्ष्य यह है कि इसमें संस्कृत और अरबी फ़ारसी के वही शब्द आने पायें जो आमक्रहम हों। अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दों को इसमें स्थान न दिया जाय। हमें इसमें आपत्ति क्यों होनी चाहिये? भाषा जितनी ही सरल होगी, मनुष्य उतना ही मनुष्य के निकट आ जायगा, विचारों के आदान-प्रदान में आसानी होगी और हमारी एकता की परिधि बढ़ेगी।

हम तो हिन्दुस्तानी को भी हिन्दी ही का एक रूप मानते हैं। हमारे कुछ शिक्षित और हिन्दी की रक्षा के लिये चिन्तित मित्रों की यह

आशङ्का है कि इसके प्रचार से हिन्दी को हानि होगी। मेरे ख्याल में उनकी यह धारणा ग़लत है। क्योंकि भाषा का शब्द-भांडार जितना ही बढ़ा होगा, उतनी ही भाव-वहन की उसकी शक्ति भी बढ़ जायगी।

मुझे तो हिन्दुस्तानी से हिन्दी की कोई हानि होती नहीं दिखाई पड़ती। हिन्दी में सैकड़ों शब्द डच, पोर्चुगीज़, फ्रेंच और अंग्रेज़ी भाषा के भरे हुये हैं, फिर अरबी, फ़ारसी ही के शब्दों से हमें घृणा क्यों होनी चाहिये ?

लेकिन हम हिन्दी की प्रकृति और संस्कृति के अनुसार हो विदेशी भाषा के शब्दों को लेंगे। प्रत्येक शब्द को हिन्दी के व्याकरण के अधीन होकर रहना होगा। जैसे, वक्त का बहुवचन अवकात न लेकर हम वक्तों लेंगे। इसी तरह पार्टी का बहुवचन पार्टियाँ या पार्टियों लेंगे, पार्टिज़न नहीं। यह इस कारण से नहीं कि हमें दूसरी भाषाओं के रूपों से घृणा है, बल्कि इसलिये कि अधिकांश हिन्दू, मुसलमान, पारसी और सिख आदि हिन्दी ही के रूप को समझते हैं और राष्ट्र-भाषा का लक्ष्य यही है कि वह अधिकांश लोगों की समझ में आसानी से आये। उसे चाहे हिन्दी कहिये, चाहे हिन्दुस्तानी कहिये, दोनों का एक ही अर्थ है—हिन्द या हिन्दुस्तान की भाषा।

लेकिन हिन्दुस्तानी जिस सौचे में ढाली जा रही है, हम उसके खिलाफ़ हैं। जिसे हम उर्दू ज़बान कहते हैं, वह तो एक मंजीमंजाई ज़बान है। उसको खरादने में उर्दू के शायरों और लेखकों ने सदियों तक जी-तोड़ परिश्रम किया है। उसके शब्द अपना स्पष्ट अर्थ रखते हैं। उनका दुरुपयोग न होना चाहिये। हिन्दुस्तानी के बहुत से नये लेखक कभी-कभी उर्दू के कोष में दिये हुये अर्थ के आधार पर ऐसे शब्दों का प्रयोग कर बैठते हैं, जिनका लोक-प्रचलित अर्थ जुदा ही होता है, उन्हें देखकर हिन्दुस्तानी की हालत पर तरस खाना पड़ता है। जैसे, हाजत शब्द का अर्थ कोष में ज़रूरत लिखा है; और उर्दू के गद्य-पद्य में वह इसी अर्थ में प्रयुक्त भी होता है, पर लोक में यह शौच जाने के अर्थ में

प्रचलित है। अब अगर हिन्दुस्तानी का कोई नया शौकीन यह वाक्य लिखे कि मुझे खाने की हाजत लग रही है; तो क्या वह हास्यास्पद न होगा ?

हिन्दुस्तानी का बोलता हुआ विशाल कोष, जिसका नाम जनता है, सामने खुला पड़ा है। हमें हिन्दुस्तानी के लिये शब्दों का चुनाव उसमें से क्यों न करना चाहिये ? संस्कृत और अरबी-फ़ारसी के जितने शब्द गाँवों के हिन्दू-मुसलमान दोनों आसानी से बोलते और समझते हैं, हमें उतने शब्द से लेने चाहिये। यद्यपि यह काम परिश्रम-साध्य है, पर राष्ट्र-भाषा का निर्माण इसीसे होगा। और हिन्दी-उर्दू के विवाद को रोकने के लिये यही सबसे सुगम रास्ता भी है।

दूसरी मेरी एक तजवीज यह है कि हिन्दुस्तानी के दो रूप होने चाहिये—एक प्रांतीय, दूसरा सार्वदेशिक। प्रांतीय हिन्दुस्तानी में प्रत्येक प्रांत में बहु-प्रचलित संज्ञा शब्द भर लेने चाहिये और उस प्रांत की रीढ़ों में उनका प्रयोग होना चाहिये। जैसे, गुजराती का चोपदी शब्द; यह पुस्तक और किताब के साथ गुजरात प्रांतीय रीढ़ों में रक्खा जाय तो हमें आपत्ति न होनी चाहिये। रीढ़ें हिन्दी, उर्दू और अपनी प्रांतीय भाषा के योग्य जानकारों ही से लिखाई जायँ, तभी प्रांतीय भाषा के खुने हुये शब्द हिन्दी-उर्दू में समावेश पा सकेंगे।

इससे एक बड़ा लाभ तो यह होगा कि भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं के बहुत-से शब्द अपनी-अपनी योग्यता के आधार पर सरकर राष्ट्र-भाषा में पहुँच जायँगे और उसमें नये भावों की सृष्टि करेंगे। दूसरा लाभ यह होगा कि भिन्न प्रांतीय शब्दों के मिश्रण से उन प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार अधिक होगा। सार्वदेशिक हिन्दुस्तानी में प्रांतीय भाषाओं के शब्द न रहेंगे, उसमें हिन्दी और उर्दू में प्रचलित आमक़हम शब्द ही रखे जायँगे।

(२१)

लिपि

लिपि का प्रश्न भी हिन्दुस्तानी की उन्नति में बहुत बाधक है। लिपि-भेद ही से हिन्दी और उर्दू दो हैं, नहीं तो उनमें मौलिक अन्तर कुछ भी नहीं है। उर्दू जिस लिपि में लिखी जाती है, वह इतनी अपूर्ण है कि उसमें संस्कृत के संयुक्ताक्षर वाले शब्द को सही-सही लिखना और पढ़ना नहीं हो सकता। हिन्दी शब्दों के शुद्ध संस्कृत रूप को विकृत बना देने में उर्दू की अपूर्ण लिपि का बड़ा प्रभाव पड़ा हुआ है। जैसे भाई-बन्धु को उर्दू में भाई-बन्द लिखेंगे। यहाँ धु का द लिपि-दोष ही से हो गया है। इसी तरह हमें अपना भाग्य और प्रारब्ध छोड़कर उर्दू की किस्मत अपनानी पड़ेगी और प्रमाण के बदले सबूत मुँह में रखना पड़ेगा। यह हिन्दी के लिये चिन्ता की बात जरूर है। पर हमें राष्ट्र के कल्याण-मार्ग को न छोड़कर उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये, जब गुजरात और बंगाल की तरह हिन्दी सूबों में भी एक ही लिपि का चलन हो जायगा।

उर्दू-पद्य

हिन्दी और उर्दू दोनों की पद्य-रचना के इतिहास में अमीर खुसरो का नाम सबसे पहले आता है। अमीर खुसरो का जन्म संवत् १३१२ और मरण सं० १३८२ में हुआ। खुसरो ने बड़ा सुन्दर स्वभाव पाया था। वह फारसी के अच्छे कवि तो थे ही, अपने समय की बोलचाल में भी उन्होंने बड़ी सरस कविता की है। उनकी पहेलियाँ, ढकोसले, मुकरियाँ और दो सखुने आज तक प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ठुमरी उन्होंने बनाई। उनके बनाये हुये गीत दिल्ली के आसपास की स्त्रियाँ अब तक गाती हैं। उनमें से एक गीत यह है—

अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।

बेटी तेरा बाबा तो बुढ़ा री कि सावन आया ॥

(२२)

अम्मा मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया ।
 बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया ॥
 अम्मा मेरे मामूँ को भेजो जी कि सावन आया ।
 बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री कि सावन आया ॥

खुशरो ने ख़लाक़-बारी नाम की एक पुस्तक लिखी है, जो फ़ारसी छन्दों में है; जिसे हिन्दी-फ़ारसी का पद्य-कोष कहना चाहिये । उसके उदाहरण लीजिये—

ख़ालक़ बारी सिरजनहार । वाहिद एक विदा करतार ॥
 रसूल पयम्बर जान बसीठ । यार दोस्त बोली जा ईठ ॥
 बया बिरादर आव रे भाई । ब-नशीं मादर बैठ री माई ॥

इसी तरह फ़ारसी छन्दों में खुशरो ने एक और रचना की है, जिसमें फ़ारसी और ब्रजभाषा का मिश्रण है । जैसे—

ज़े हाले मिसक़ीं मकुन तगाफ़ुल दुराय नैना बनाय बतियाँ ।
 कि ताबे हिजराँ न दारम ऐ जौं न लेहु काहें लगाय छतियाँ ॥
 शबाने हिजराँ दराज़ चू जुल्फो रोज़े वसलत चु उम्र कोतह ।
 सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ ॥

यद्यपि खुशरो ने फ़ारसी बहरों में कविता की है, पर उन्होंने भाषा का नाम रेख़ता या उदूँ कहीं नहीं लिखा । जहाँ कहीं भाषा का नाम उनकी कविता में आया है, वहाँ अरबी फ़ारसी के साथ हिन्दी का नाम उन्होंने लिखा है । इससे भी प्रकट होता है कि उस समय की बोलचाल की भाषा का नाम हिन्दी था ।

खुशरो के बाद कबीर की कुछ कविता फ़ारसी बहरों में मिलती है । हमारा अनुमान है कि रेख़ता नाम कबीर से भी पहले का है; और यह नाम अरबी-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी के लिये उत्तर भारत ही में पड़ा होगा । उत्तर ही से यह नाम दक्खिन गया होगा । यह शब्द इतना

(२३)

प्रचलित रहा होगा कि ठेठ से ठेठ हिन्दी में पद कहने वाले कबीर ने भी इसे ग्रहण किया ।

जून, १९२५ की 'सरस्वती' में प्रकाशित एक लेख से यह विदित होता है, कि गोलकुंडा के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह का एक हस्तलिखित दीवान, जो अठारह सौ पृष्ठों में लिखा हुआ है, और उस समय की बोलचाल की भाषा में है, अभी तक निज़ाम हैदराबाद के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है । कुतुबशाह सं० १६३७ में गद्दी पर बैठे थे । स्पष्ट है कि यह दीवान वली से पहले का है, और रेखता का सबसे पहला दीवान है ।

कुतुबशाह का उपनाम 'ज़िल्ले अल्लाह' था । 'ज़िल्ले अल्लाह' के कुछ शेर यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

कुफ़र रीत क्या हौर इसलाम रीत ।
हर एक रीत में इश्क का राज है ॥

(२)

तुम बिन रहा न जावे अन नीर कुछ न भावे ।
बिरहा किता सतावे मन सेति मन मिला दो ॥

(३)

मुँज इश्क के गदा को औरङ्गशाही देता ।
सब अशिकाँ मुँज आगे हैं तिफ़ल जों दबिस्ताँ ॥

(४)

चर्ख के खुमझाने में सूर पिया मानो मद ।
मस्त हो जाकर पड़ता गर्व के चरमे मँझार ॥

इसके बाद दक्खिन के थोड़े-से शायर और हैं, जिनकी रचना के नमूने उर्दू के संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं । उनके नाम और उनकी कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं—

(२४)

अहसन—

जब ते सफ़र पी ने किया तब ते ग़रीब आवारः हूँ ।
या बेग पी आया करें या मुजको लें बुलवाय कर ॥

अहमद—

भरें दो नैन के छगलौं सवूरी साथ ले तोशा ।
कमर हिम्मत की बाँधी औ बिपत की बाट पर निकले ॥

अशरफ़—

पिया बिन मेरे तड़ बैराग भाया है जो होनी हो सो हो जावे ।
भवत अब जोगियों का अङ्गलाया है जो होनी हो सो हो जावे ॥

जाफ़र—

ग़ज़ाँ से देखो शोख़ मुझे मारकर चले ।
मजरूह तिस प राह मनी ढार कर चले ॥

खुशनूदी—

सब रैन जागे सेज पर तो भी सजन आया नहीं ।
चुप-चुप के देखी बाट मैं दरसन को दिखलाया नहीं ॥

सादी—

हमना तुमन को दिल दिया तुम दिल लिया औ दुख दिया ।
तुम यह किया हम वह किया यह भी जगत की रीत है ॥
सादी ग़ज़ल अंगोस्तः शीरो-शकर आमेस्तः ।
दर रेस्तः दुर रेस्तः हम शेर है हम गीत है ॥
फ़ज़ली—

रखूँ हूँ नीमजाँ जानाँ तसद्दुक तुम् प' करने को ।
किया सब तन को मैं दरपन अक्लूँ दरसन न पाये हूँ ॥

हाशम—

दखिन औ हिन्द के दिलवर हमन से बेहिजाब अच्छे ।
कि मुखड़े चाँद से पर जिनके खत के पेच-ताब अच्छे ॥

(२५)

अज्ञीजुल्ला—

मुझ नीमजाँ की क्या सकत बोलूँ जो बलियाँ की सिकत ।

आज्ञिज्ञ अज्ञीजुल्ला उपर दक्खिन के सब पीरों मदद ॥

लुत्फ़ी—

मैं इश्क़ की गली में घायल पड़ा था तिस पर ।

जोवन का माता आकर मुझको खँदल गया है ॥

तुझ इश्क़ की अग्नि से शोला हो जल उठा जिउ ।

दिल मोम के नमूना गलगल पिघल गया है ॥

हातिफ़ी—

आँखों औ जुलू से तेरी काफ़िर हुआ सारा जहाँ ।

इसलाम औ तकवे कहाँ जुहद औ मुसलमानी किधर ॥

महमूद—

महमूद मुझ में दिसता पूरा हुनर वफ़ा का ।

है क्या हुनर जो भावे तू पो को इस हुनर से ॥

इनके बाद दक्खिन के शायरों में वली का नाम आता है, जिसका वर्णन कविता-कौमुदी के प्रारम्भ में दिया गया है ।

एक और पुराने शायर हामिद का नाम भी सुना जाता है । उनका एक शेर यह है ।—

अज़म सफ़र चूँ कर दी साजन नैनों नौंद न आये जी ।

क्रद्रे विसालत ना दानिश्तम तुम भिन बिरह सताये जी ॥

“बहस्लूसाहत” के लेखक ने अपनी पुस्तक में मुंशी प्यारेलाल “शौक्ती” की एक ग़ज़ल दी है । और यह भी लिखा है कि वह जहाँगीर के समय में थे और फ़ारसी के शायर थे । उर्दू में भी कुछ कह लेते थे । ग़ज़ल यह है—

जिन प्रेम रस चाखा नहीं अमृत पिया तो क्या हुआ ।

जिन इश्क़ में मर ना दिया जो जग जिया तो क्या हुआ ॥

(२६)

तावीज़ औ तूमार में सारी उमर ज़ाया किती ।
 सीखे मगर हीले घने मुल्ला हुआ तो क्या हुआ ॥
 जोगी वो जंगम सेवड़ा रँग लाल कपड़े पहिर के ।
 वाक्रिक्र नहीं इस हाल से कपड़ा रँगा तो क्या हुआ ॥
 जिउ में नहीं पी का दरद बैठा मशायख होय कर ।
 मन का रहट फिरता नहीं सुमिरन किया तो क्या हुआ ॥
 जब इश्क के दरियाव में होता नहीं गरकाब तैं ।
 गंगा बनारस द्वारका पनघट फिरा तो क्या हुआ ॥
 मारग बसी सब छोड़कर दिल तनसे तैं खिलवत पकड़ ।
 'शौक़ी' पियारे लाल बिन सबसे मिला तो क्या हुआ ॥

उर्दू के युग

पहला युग

उर्दू-पद्य के इतिहास को हम कई युगों में बाँट सकते हैं । पहले युग के मुख्य शायर वली, आबरू, नाज़ी, यकरंग, हातिम, आरज़ू और फुग़ाँ हैं । इस युग में आगे लिखे हिन्दी-शब्द उर्दू-कविता में प्रयुक्त होते रहे हैं—

से के स्थान में	सों सें, सूँ, सेती	बेगाना	„ „	बगाना	
को	„ „	कों, कूँ	अन्दर	„ „	भीतर
हमको	„ „	हमनकूँ	माशूक	„ „	मोहन, सरीजन
दुनिया में,	„ „	जग मने			पी, पीतम
तेरे	„ „	तुरू	आँसू	„ „	आँसू
तरह	„ „	नमन	भवें	„ „	भवौ
जग	„ „	जहान, दुनिया	पलकें	„ „	पलकौ
कलाम	„ „	बचन	आँखें	„ „	नैन, आँखड़ियाँ
हमेशा	„ „	नित	यह	„ „	यौ
मुँह	„ „	मुख	हैरान	„ „	भेचक
तस्बीह	„ „	तस्बी	को	„ „	अपने तईं कों, कों

(२७)

जानेवाला	„ „	जानेहारा	दिल	„ „	मन
बजाने को	„ „	बजावने को	से	„ „	सेती
करमाया है	„ „	करमायता है	जलगाया	„ „	बलगाया
जाता है	„ „	जावता है	सिदक्रे	„ „	बलि
मुझे	के स्थान में	मुझ	पराठा	„ „	परोठा
को	„ „	के तई	आहिस्ता	„ „	धीरा
में	„ „	मों	में	„ „	बीच, भीतर
खाके पा	„ „	खाके चरन	तरक	„ „	ओर
दिखाई देता	„ „	दिसता	प्यारा	„ „	पियारा
आईना	„ „	आरसी	जिधर	„ „	जीधर
तरक करके	„ „	तज, तजकर	उधर	„ „	ऊधर
जुलम	„ „	जालनी	उन्हों	„ „	उन
दीदार	„ „	दरस, दरसन,	यहाँ	„ „	याँ
वीरान	„ „	सुजाँ	वहाँ	„ „	वाँ
भाव	„ „	भा			इत्यादि;

इस युग में कुछ फारसी के महावरे लाकर मिलाये गये; कुछ फारसी के नये शब्द भी आये; पर वर्णन-शैली एक ही-सी रही। घोड़ा का तुक गोरा मिला दिया जाता था।

दूसरा युग

दूसरे युग के मुख्य शायर जानजानाँ, सौदा, सोज़, दर्द और मीर हैं। उर्दू के विद्वानों का कथन है कि जानजानाँ, सौदा, मीर और दर्द ने उर्दू के पौधे को जङ्गल में से लाकर उपवन में लगा दिया और उसे सींचकर उसमें मनोहर फूल खिलाये।

दूसरे युग में यद्यपि बहुत से पुराने शब्द निकाल दिये गये, और बहुत से नये भरती कर लिये गये, पर फिर भी नीचे लिखे शब्द रह ही गये :—

(२८)

तूने	के स्थान में	तैं	हिलना	के स्थान में	हलना
हमेशा	„ „	नित	घिसना	„ „	घसना
मिट्टी	„ „	माटी	रूह, जीव	„ „	जीउड़ा
मिल	„ „	रल	पत्थर	„ „	पत्थर
लगा	„ „	लागा	बजता	„ „	बाजता
हमारे पास	„ „	हम पास	ढाकर	„ „	ढाय कर
एक	„ „	एकॉ	देखना	„ „	दीद करना
कहता है	„ „	कहे है	नाम	„ „	नाओं
उधर	„ „	ऊधर, तिधर	कबतक	„ „	कबलग
उनसे	„ „	उन कने	उसने	„ „	उने
आती थीं	„ „	आतियों थीं	टोलता है	„ „	टोलै है
मेरी जान	„ „	मेरा जान	बात	„ „	बचन
ज़रा	„ „	टुक	न	„ „	नै
कहते हो	„ „	कहो हो	नाम	„ „	नाँव
आईं	„ „	आइयाँ			इत्यादि;

निदान, विस्तार, तनक, नगर, वास आदि शब्द भी प्रयोग में आते थे। एक विशेषता यह थी कि स्त्रीलिंग बहुवचन की क्रिया का रूप भी भिन्न था। जैसे, 'औरते' आती थीं या जाती थीं' के बदले 'औरतें आतियाँ थीं, जातियाँ थीं' लिखते थे। जान, बुलबुल और सैर को पुल्लिंग लिखते थे।

तीसरा युग

तीसरे युग के मुख्य शायर जुरअत, हसन, इन्शा और मसहफ़ी हैं। इस युग में उर्दू-भाषा पहले से बहुत परिमार्जित हुई। हिन्दी के बहुत से शब्द हटाकर उनके स्थान में अरबी-फ़ारसी के शब्द रखे गये। फिर भी जो बच रहे, उनकी सूची यह है—

नित, टुक, अँखड़ियाँ, ज़ोर (बहुत), भल्लारे, फ़मकड़ा, अजी,

(२६)

जिन्हों के, उन्हों को, पोन्, ईधर, पूछो हो, शर्मातियाँ, कीधर, ऊधर इत्यादि ।

चौथा युग

चौथे युग के प्रसिद्ध शायर नासिख, आतिश, मोमिन, जौक, गालिब, अमीर, अनीस, दबीर, दाग और आसी हैं । इस युग में उर्दू भाषा पहले की अपेक्षा बहुत परिमार्जित हो गई । फिर भी कुछ पुराने शब्द रह ही गये । जैसे पः (पर), तलक (तक), बीहड़, बलबे, अज़ीज़ाँ भारियाँ, अधियारियाँ, इत्यादि ।

पाचवाँ युग

पाँचवें युग के प्रसिद्ध शायर हाली, अकबर, इक़बाल और चकबस्त आदि हैं । भाषा पहले की अपेक्षा बहुत परिमार्जित और महावरेदार हो गई है, पर पद्य की भाषा में एक दोष, जो पहले से चला आता है, अबतक ज्यों का त्यों है । वह यह है कि शब्द स्वाधीन नहीं हैं, बल्कि छंद की गति के अधीन हैं । जैसे—

यह न थी हमारी किस्मत कि विसाले-यारहोता ।

अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता ॥

यह लिखा तो ऐसा गया है, पर पढ़ा जाता है इस तरह—

य न थी हमारि किस्मत कि विसाल यार होता ।

अगरौर जीत रहते यहि इन्तज़ार होता ॥

विसाल और जीत को ज़रा विसाले और जीते की ओर ज़ोर देकर पढ़ना चाहिये । हिन्दी में इस ध्वनि के लिये कोई चिन्ह नहीं ।

शब्दों का मनमानी प्रयोग करने में ऐसी ही स्वतन्त्रता ब्रजभाषा के कवियों ने ली है । परिणाम यह हुआ है कि जो लोग ब्रजभाषा या उर्दू नहीं जानते, वे इन के पद्य ठीक-ठीक पढ़ नहीं सकते ।

आजकल के हिन्दी-कवि अब शब्दों का शुद्ध प्रयोग करने लगे हैं । इससे हिन्दी-कविता पढ़नेवालों को छन्द की गति अलग सीखनी नहीं

(३०)

पड़ती, शब्द आप से आप छन्द की गति बता देते हैं। हिन्दी में तो यह त्रुटि अब नाममात्र की रह गई है, पर उर्दू के कवि अभी इधर ध्यान देते हुये नहीं दिखाई पड़ते।

उर्दू का छन्द-शास्त्र

फ़ारसी ही का छन्द-शास्त्र उर्दू में भी काम देता है। प्रायः सब छन्द भी वही हैं, जो फ़ारसी में व्यवहृत होते हैं। हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का पिंगल बहुत आसान है। हिन्दी में तो सैकड़ों हज़ारों प्रकार के छन्द हैं; पर उर्दू में छन्दों की संख्या अधिक से अधिक ५० होगी। हिन्दी की तरह इसमें अक्षरों और मात्राओं की गिनती नहीं करनी पड़ती। चार-पाँच शब्द हैं, जिनको हेर-फेरकर रखने से नये छंद बन जाते हैं।

उर्दू में छन्द को बहर कहते हैं। मशहूर बहरें, कुल उन्नीस हैं। उनमें से पाँच बहरें ख़ास अरबी के लिये हैं। बाक़ी अरबी और फ़ारसी दोनों में काम देती हैं। उर्दू के पुराने शायर मुश्किल बहरों में भी कुछ कह लेने का प्रयत्न कर लेते थे; पर अब मुश्किल बहरों का प्रचार उठता जाता है, और शायर लोग सरल भाषा के साथ आसान बहरों का भी प्रयोग करने लगे हैं। यहाँ मुख्य-मुख्य बहरें दी जाती हैं—

१—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन फ़जलुन।

उदाहरण—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।

मुझे तुम छोड़कर बन को सिधारे ॥

हिन्दी में इस बहर का नाम सुमेरु है।

२—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ालुन।

उदाहरण—

दिल इबादत से चुराना और जन्नत की तलब।

कामचोर इस काम पर किस मुँह से उजरत की तलब ॥

(३१)

हिन्दी में इसे गीतिका कहते हैं ।

३—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन ।

उदाहरण—

खमोशी इसलिये दीवानगी में हमने हासिल की ।

खुदा जाने वो क्या पूछे हमारे मुँह से क्या निकले ॥

हिन्दी में इसे विधाता छंद कहते हैं ।

४—फ़ायलुन मफ़ाईलुन मफ़ऊल मफ़ाईलुन ।

उदाहरण—

इश्क़ से तबीअत ने ज़ीस्त का मज़ा पाया ।

दर्द की दवा पाई दर्द बे दवा पाया ॥

५—मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल मफ़ाईलुन ।

उदाहरण—

खुरशेद जो निकला है इस वक्तू या' लरज़ों है ।

कोठे प खड़ा शायद वह माहेलका होगा ॥

हिन्दी में इसे 'दिग्गपाल' कहते हैं ।

६—मफ़ऊल मफ़ाईल मफ़ाईल मफ़ाईल ।

उदाहरण—

(१)

तू जिसको कमर समझा है शीशे में है वो बाल ।

आईने में छाला है नहीं ऐ गुलेतर नाक ॥

(२)

जिसको तेरी आँखों से सरोकार रहेगा ।

बिलफ़र्ज़ जिया भी तो वो बीमार रहेगा ॥

हिन्दी में इसे 'बिहारी' छन्द कहते हैं ।

(३२)

७—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईल ।

उदाहरण—

मुहब्बत कोड़ियों के हो अगर मोल ।

बनी आदम न ले यह दर्दसर मोल ॥

हिन्दी में इसे 'शास्त्र' छन्द कहते हैं ।

८—फ़ायलातुन मुफ़ालुन फ़ेलुन ।

उदाहरण—

शाम से कुछ बुझा सा रहता है ।

दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का ॥

९—मफ़ऊल फ़ायलात मफ़ाईल फ़ायलुन ।

उदाहरण—

हाजत नहीं है शाम की मेरे मजार पर ।

हर सब है सोज़े आह से रोशन चिराग़ो-दिल ॥

१०—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन ।

उदाहरण—

सुबह गुज़री शाम होने आई मीर ।

तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा ॥

हिन्दी में यह 'पीयूषवर्ष' छंद कहलाता है ।

११—फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन ।

उदाहरण—

समाया है जब से तू आँखों में मेरी ।

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ॥

हिन्दी में इसे भुजंगप्रयात कहते हैं ।

१२—फ़ऊल फ़ेलुन फ़ऊल फ़ेलुन फ़ऊल फ़ेलुन फ़ऊल फ़ेलुन ।

उदाहरण—

कहाँ हैं हम में अब ऐसे सालिक कि राह ढूँढ़ी कदम उठाया ।

जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी कलम उठाया ॥

हिन्दी में इसे 'यशोदा' छंद कहते हैं ।

(३३)

१३—मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल फ़ऊलुन, मफ़ऊल फ़ऊलुन ।

उदाहरण—

सौदाए सुहबबत जो नहीं है तुम्हे ऐ दिल, तो फिर मुम्हे बतला ।
क्यों चाक किये अपने गरेबों को है फिरता, आँखों प है वहशत ॥
हिन्दी में इसे 'खरारी' छंद कहते हैं ।

१४—सुतफ़ायलुन सुतफ़ायलुन सुतफ़ायलुन सुतफ़ायलुन ।

उदाहरण—

पसे मर्ग मेरी मज़ार पर जो दिया किसी ने जला दिया ।
उसे आह दामने बाद ने सरे शाम ही से बुझा दिया ॥
हिन्दी में यह 'हरिगीतिका' छंद कहलाता है ।

१५—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलात ।

उदाहरण—

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है ।
कोई बतलाओ कि हम बतलायँ क्या ?
हिन्दी में इसे 'आनन्द-वर्धक' कहते हैं ।

१६—मफ़ऊल फ़ायलातुन मफ़ऊल फ़ायलातुन ।

उदाहरण—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोसतों हमारा ।
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलिसतों हमारा ॥
हिन्दी में यह 'दिग्पाल' छन्द कहलाता है ।

१७—फ़ऊलन फ़ऊलन फ़ऊलन फ़ऊल ।

उदाहरण—

कहे एक जब सुन ले इन्सान दो ।
कि हक़ने जुबाँ एक दी कान दो ॥
हिन्दी में यह 'भुजंगी' छंद कहलाता है ।

१८—मफ़ऊल मफ़ायलुन फ़ऊलन; या मफ़ाईल ।

(३४)

उदाहरण—

हर शास्त्र में है शिगूफ़ाकारी ।

समरा है कलम का हम्देवारी ॥

१६—मफ़ायलुन मफ़ायलुन मफ़ायलुन मफ़ायलुन ।

उदाहरण—

य थोड़ी थोड़ी मैं न दे कलाई मोड़ मोड़ कर ।

भला हो तेरा साक्रिया पिला दे खुम निचोड़ कर ॥

नियमों को स्वर से पढ़ने पर उसी में उसकी गति भी निकल आती है । जो लोग उर्दू नहीं जानते, वे उर्दू के शेरों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ नहीं सकते । क्योंकि उर्दू के शायर आवश्यकता पढ़ने पर दीर्घ अक्षरों को ह्रस्व कहकर पढ़ा करते हैं । पर लिखने में वे उन्हें शुद्ध लिखते हैं । केवल हिन्दी जाननेवाला उन्हें शुद्ध-शुद्ध पढ़ तो लेगा, संभव है, अर्थ भी समझ ले; पर वह उसे शुद्ध बहर में नहीं पढ़ सकेगा । जैसे—

गुलिस्तों में जाकर हरेक गुल को देखा ।

न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है ॥

बहर के अनुसार पढ़ने के लिये यह इस तरह लिखा जाना चाहिये—

गुलिस्तों में जाकर हरेक् गुल को देखा ।

न तेरी सि रंगत न तेरी सि बू है ॥

हिन्दी में यह 'भुजंगप्रयात' छंद है । भुजंगप्रयात की गति जानकर जब यह पढ़ा जायगा तो जीभ आप से आप इसे ठीक कर लेगी । ऊपर जो बहरों के लक्षण दिये गये हैं, उनके पढ़ने का अभ्यास कर लेने पर उर्दू की कविता पढ़ने में गति की गड़बड़ कम हो जायगी ।

यहाँ उर्दू-पद्य के ख़ास-ख़ास विषयों का वर्णन किया जाता है—

ग़ज़ल

ग़ज़ल का अर्थ है जवानी का हाल बयान करना अथवा माशूक की संगति और इश्क का ज़िक्र करना । इसलिये एक ग़ज़ल में प्रेम के भिन्न-

(३५)

भिन्न भावों के शेर लाने का नियम रखा गया है। किसी शेर में आशिक्र अपनी मनोवेदना प्रकट करता है, जिससे माशूक पर उसका कुछ प्रभाव पड़े। किसी शेर में वह माशूक की प्रशंसा करता है, जिससे वह प्रसन्न हो। किसी शेर में वह माशूक की वक्रा और जक्रा का जिक्र करता है, और किसी में रक्तीव की शिकायत करता है। मतलब यह कि जिस बात के कहने से माशूक के प्रसन्न होने या और कोई खास नतीजा निकलने की आशा होती है, वही बातें ग़ज़ल में आती हैं। कभी-कभी सौन्दर्य, प्राकृतिक छटा और वैराग्य की बातें भी ग़ज़ल में कही जाती हैं। अब तो देशभक्ति की बातें भी ग़ज़लों में कही जाने लगी हैं; क्योंकि ग़ज़लों का स्वर बहुत लोकप्रिय हो चला है। इसलिये उर्दू के शायर ग़ज़लों से देश-सेवा का काम भी लेने लगे हैं।

पर ग़ज़लों का जन्म केवल प्रेम-चर्चा के लिये हुआ था। अरब में ग़ज़ल नाम का एक आदमी था। उसने अपनी सारी उम्र इश्क़बाज़ी में बिता दी। वह सदा इश्क़ और हुस्न ही की बातें किया करता था और उन्हीं विषयों के शेर पढ़ा करता था। उसी समय से, जिस कविता में इश्क़ और हुस्न का जिक्र हो, लोग उसे ग़ज़ल को याद में ग़ज़ल कहने लगे।

आजकल ग़ज़लों का बहुत प्रचार है। मशायरों में तो खासकर ग़ज़लें ही पढ़ी जाती हैं। थियेट्रों में ग़ज़लों का बोल बाला है। रंडियों प्रायः ग़ज़ल ही गाती हैं। आजकल के सभा-समाजों में भी स्वदेशी ग़ज़लों का अधिकार होता जाता है। और अब तो हिन्दी के कवि भी हिन्दी-भाषा में ग़ज़लें लिखने लगे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि धीरे-धीरे ग़ज़लों की सर्वप्रियता बढ़ती जा रही है।

ग़ज़ल में शेरों की संख्या ताक़ होती है। साधारण नियम यह है कि एक ग़ज़ल में पाँच से कम और ग्यारह से ज्यादा शेर न होने चाहियें। पर कुछ पुराने शायरों ने कम से कम तीन शेर और अधिक से अधिक पच्चीस शेर तक की ग़ज़लें मानी हैं। आजकल सत्रह, उन्नीस और इक्कीस

(३६)

शेर तक की ग़ज़लें लिखी जाती हैं। यदि कोई कवि ग़ज़ल के नियमों की पाबन्दी और महावरों का उचित प्रयोग करता हुआ पचास शेर की ग़ज़ल लिखे, तो यह उसके लिये गौरव की बात है, नियम की अवहेलना नहीं।

क़सीदा

क़सीदा उन शेरों को कहते हैं, जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निन्दा हो। जैसे ग़ज़ल के लिये प्रेम की रीति-भाँति से जानकार होना आवश्यक है; वैसे ही क़सीदे के लिये दरबारी क़ायदे-क़ानून, और लोक-व्यवहार से अभिज्ञ होना बहुत ज़रूरी है, जिससे शायर प्रत्येक विषय का ठीक-ठीक वर्णन कर सके और कोई बात मर्यादा के बाहर न जा सके। ग़ालिब कहते हैं कि जो शायर क़सीदा नहीं लिख सकता, उसकी गिनती शायरों में करनी ही ना चाहिये। बात बिल्कुल सच है। क़सीदे ही से कवि की बहुज्ञता का पता चलता है। उर्दू में सौदा, इन्शा और जौक़ का क़सीदा लिखने में बड़ा नाम है।

मसनवी

मसनवी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के पद्य-बद्ध जीवन-वृत्तान्त या कल्पित कथा को कहते हैं। मसनवी उर्दू में बहुत कम हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध “कुलज़ार नसीम” है, जो पंडित दयाशङ्कर ‘नसीम’ की लिखी हुई है। फ़ारसी में शाहनामा, सिक़न्दरनामा और यूसुफ़-ज़ुलेखा नाम की मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

मरसिया

मरसिया शोक-गीत को कहते हैं। प्रायः सब मरसियों में हसन-हुसेन का शोक-प्रद वृत्तान्त कहा गया है। अनीस और दबीर के मरसिये बहुत प्रसिद्ध हैं।

(३७)

रुवाई

रुवाई चार मिसरों का छन्द है । इसमें नीति या उपदेश की बड़ी-बड़ी बातें थोड़े शब्दों में, सुन्दर, महाबरेदार भाषा में कही जाती हैं । अरबी और फ़ारसी में रुवाइयों का बड़ा प्रचार है । फ़ारसी में उमर खैयाम की रुवाइयाँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि संसार की प्रायः सब प्रसिद्ध भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं ।

मुसल्लस

मुसल्लस को हिन्दी में तिपदा या तिकड़ी कहना चाहिये । इसमें तीन मिसरे समान वज़न के होते हैं । जैसे—

या तो अफ़सर मेरा शाहाना बनाया होता ।

या मेरा ताज ग़दायाना बनाया होता ।

वर्ना ऐसा जो बनाया न बनाया होता ॥

मुखम्मस

मुखम्मस को पँचकड़ी समझिये । इसमें पाँच-पाँच कड़ियों का एक-एक बन्द होता है । पाँचवीं कड़ी का तुक मिलता हुआ रहता है । जैसे—

(१)

मुझे तो कहते हो रंग तेरा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है ।
जमाने की तरह ढङ्ग किसका घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है ।
न आज मानूँगा कल का वादा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है ।
किसे भरोसा कि दम का नक़शा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है ।
घड़ी की सूरत लगा है खटका घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है ॥

(२)

मैं हूँ मरीज़े तपे मुहब्बत अर्याँ है बेताबियों की सूरत ।
मैं दिलजला हूँ दमे अयादत न जी के बचने की आई नौबत ।
जो कोई दम पाये गर्म सोहबत तो फूँके जा सूर सहर उल्फ़त ।

(३८)

न कीजो हमदम ज़रा भी शकलत कि मिस्ले अखगर है दम की हालत ।
जो दम में जिन्दा तो पल में मुर्दा, घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है ।

मुसद्दस

मुसद्दस छः मिसरों या तीन शेरों का होता है । पहले के चार मिसरों के तुक एक होने चाहियें । शेष दो के तुक अलग होते हैं । उर्दू में “हाली” का मुसद्दस बहुत प्रसिद्ध है । अनीस और दबीर के मरसिये भी मुसद्दस में हैं ।

तारीख

किसी घटना या किसी के जन्म-मरण का जब सन् कहना होता है, तब उर्दू में उस ढंग से नहीं कहा जाता है, जैसे हिन्दी में है । हिन्दी-कविता में अङ्क के स्थान पर उसी संख्या वाले पदार्थ का नाम लिखा जाता है । जैसे, सं० १६६७ कहना होगा तो ऋषि, ग्रह, अङ्क, मयङ्क से मतलब निकल आयेगा । पर उर्दू में एक-एक अक्षर के लिये अलग संख्या की कल्पना कर ली गई है । कोई सन् कहना होता है तो कुछ ऐसे अक्षरों के शब्द बनाकर लिखते हैं, जिनसे घटना का अर्थ भी निकल आता है और अक्षरों की संख्यायें जोड़ने से सन् भी । प्रत्येक अक्षर के लिये जो अङ्क नियत हैं, उनकी सूची यहाँ दी जाती है—

अलिफ़	=	१	ई (बड़ी)	=	१०	काफ़	=	१००
बे	=	२	काफ़	=	२०	रे	=	२००
जीम	=	३	लाम	=	३०	शीन	=	३००
दाल	=	४	मीम	=	४०	ते	=	४००
हे (छोटा)	=	५	नूँ	=	५०	से	=	५००
वाव	=	६	सीन	=	६०	खे	=	६००
ज़े	=	७	ऐन	=	७०	ज़ाल	=	७००
हे बड़ी	=	८	फ़े	=	८०	जाद	=	८००
तोए	=	९	साद	=	९०	ज़ोए	=	९००
						ग़ैन	=	१०००

(३६)

जैसे, 'कुनम् शुके खुदा', यह तारीख एक बार नासिख ने कल्ल होते-होते बच जाने पर कही थी। इसमें इतने अक्षर हैं—काफ़, नूँ, मीम, शीन, काफ़, रे, खे, दाल, अलिफ़। सब के अङ्क जोड़ने पर हिजरी सन् १२३५ आयेगा।

यहाँ तक तो उर्दू के पिंगल का बाहरी परिचय दिया गया, अब उसकी भीतरी बातें सुनिये—

शेर

शेर अरबी भाषा का शब्द है, और इसका अर्थ है बाल। सौन्दर्य के लिये बाल आवश्यक पदार्थ है। सुन्दर चेहरे पर जुलफ़ या अलक या लट का लहराना कितना मनोहर होता है, यह मनुष्य-जाति से छिपा नहीं है। बालों से सुन्दरता खिल उठती है। प्रेमिका कितनी ही सुन्दरी हो, पर सिर मुँड़ाये हो तो वह प्रेमी को पसंद नहीं आ सकती। शेर का भी यही हाल है। कविता एक सुन्दरी है, शेर उसके केश हैं। या साहित्य (अदब) माशूक है और शेर उसके गेसू हैं।

साहित्यिक परिभाषा में शेर एक पेसा साँचा है, जिसमें विचार ढाले जाते हैं। ढालनेवाला शायर कहलाता है।

शेर की मिसाल भों से दी जाती है। क्योंकि माशूक के चेहरे पर दो भवें एक शेर के मिसरों की तरह होती हैं। 'लुगत' में शेर का अर्थ "जानना" भी लिखा है।

मिसरा

मिसरा एक चरण या एक पंक्ति को कहते हैं।

मतला

किसी गज़ल में जो सबसे पहला शेर होता है, उसे मतला कहते हैं।

मक़ता

गज़ल में सबसे अंतिम शेर को मक़ता कहते हैं।

(४०)

क्राफ़िया

क्राफ़िया को हिन्दी में तुक कहते हैं । हिन्दी की तरह उर्दू में तुक मिलाने की कड़ाइयाँ नहीं हैं । उर्दू में लगा, सदा, दुआ, बजा का भी तुक मिला हुआ समझा जाता है । क्योंकि इन शब्दों में सब के अंत में “आ” है ।

रदीफ़

रदीफ़ क्राफ़िये के बाद आती है और वह सब शेरों में अपनी जगह पर कायम रहती है । कभी बदलती नहीं । जैसे—

इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना ।

दर्द का हृद से गुज़रना है दवा हो जाना ॥

इसमें फ़ना और दवा क्राफ़िया और “हो जाना” रदीफ़ है । यह ‘हो जाना’ सारी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में आयेगा । कभी-कभी एक ही अक्षर की रदीफ़ होती है । और कभी-कभी आधे से अधिक मिसरा तक रदीफ़ हो जाता है । जैसे—

मुझे तो प्यार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता ।

वो बुत बेज़ार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता ॥

इसमें “प्यार” और “बेज़ार” क्राफ़िये और “ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता” कुल का कुल रदीफ़ है ।

कभी-कभी रदीफ़ रहती ही नहीं । जैसे—

हर शाख़ में है शिगूफ़ाकारी ।

समरा है क़लम का हम्दे बारी ॥

इसमें कारी और बारी का क्राफ़िया तो है, पर रदीफ़ नहीं ।

तख़ल्लुस

तख़ल्लुस को हिन्दी में उपनाम कहते हैं । यह एक छोटा-सा नाम होता है, जिससे कवि और उसकी कविता पहचानी जाती है । इस तरह उपनाम रखने की प्रथा पहले-पहल फ़ारसी-कवियों ने चलाई । अरबी में उपनाम रखने का चलन नहीं था । संस्कृत-कवियों ने भी उपनाम नहीं

रखा। फारसी के कवियों से उर्दू और हिन्दी दोनों ने उपनाम की प्रथा ग्रहण की।

उपनाम कभी-कभी तो असली नाम ही का एक भाग होता है। जैसे, इंशाअल्ला खॉ ने अपना उपनाम “इंशा” रखा। मोमिन खॉ ने “मोमिन” और मुंशी अमीर अहमद मोनाई ने “अमीर”; और कभी-कभी अपनी पसन्द के अनुसार नाम से बिल्कुल भिन्न उपनाम रखा जाता है। जैसे, मुहम्मद तकी का “मीर”, मिर्ज़ा रफी का “सौदा”, मिर्ज़ा असदुल्ला खॉ का “ग़ालिब”, शेख़ इब्राहीम का “ज़ौक़” और नवाब मिर्ज़ाखॉ का “दाग़” इत्यादि।

कोई-कोई शायर, जो फ़ारसी और उर्दू दोनों में कविता करते हैं, अपने दो उपनाम रखते हैं। जैसे अम्बरशाहखॉ का फ़ारसी में ‘अम्बर’ और उर्दू में ‘आशुफ़ता’, नवाब मुस्तफ़ाखॉ का फ़ारसी में ‘हसरती’ और उर्दू में ‘शेफ़ता’, इत्यादि।

कुछ लोगों का ख़याल है कि उपनाम स्त्रीवाची शब्द न होने चाहियें। जैसे ‘नसीम’। पर यह उनकी भूल है। ज़ुरअत, इशरत, हसरत, वहशत, हशमत आदि बहुत से स्त्री-वाची उपनाम हैं। उपनाम अच्छा होना चाहिये, चाहे वह स्त्रीलिंग हो या पुल्लिंग।

कोई-कोई शायर मत्ला और मक़ता दोनों में अपना उपनाम लाते हैं। सौदा, मीर और नासिख़ ने प्रायः ऐसा किया है। पर ख़ास रिवाज मक़ते ही में उपनाम लाने का है।

मशायरा

उर्दू का मशायरा (कवि-सम्मेलन) देखने लायक़ होता है। तरह-तरह के बाँके-तिछे शायर जमा होते हैं। सब जुदा-जुदा पिनक में मस्त होते हैं। सब के पढ़ने के ढंग, नाज़ोअदा, कटछूट, ख़ास-ख़ास तरीक़े के होते हैं। आजकल कहीं-कहीं दिन में भी मशायरे होते हैं; पर रिवाज है रात ही में होने का। जब सब शायर जमा हो जाते हैं और दर्शक काफ़ी

तादाद में आ जाते हैं, तब मशायरा शुरू होता है। एक मीर मजलिस चुन लिया जाता है। मशायरों में जो-जो शायर अपनी ग़ज़लें पढ़ना चाहते हैं, उनके नामों की सूची मीर मजलिस के सामने रख दी जाती है। आजकल तो बिजली की रोशनी या झाड़ फ़ानूस या लालटेनों का ज़माना है, पर पहले मोमबत्तियाँ ही मजलिस की आँखें थीं। अब मशायरे में कुछ अंग्रेज़ी ढंग आ गया है। अर्थात्, शायर लोग मीर मजलिस के पास ऊँचे तख़्त पर खड़े होकर अपनी ग़ज़लें पढ़ते हैं। पर पहले शायरों को अपनी जगह से उठना नहीं पड़ता था। एक व्यक्ति शमा लेकर शायर के सामने जा पहुँचता था। उसी के उजाले में शायर चढ़कने लगते थे। लुफ़्त उस समय आता है, जब शायर अपनी ग़ज़ल शुरू करते हैं। पहले वे उठ खड़े होते हैं। बायें हाथ में कागज़ का टुकड़ा होता है, जिसमें वे ग़ज़ल लिखकर लाते हैं। शुरू करने के पहले कहते हैं—मतला अर्ज़ है। मजलिस में से आवाज़ आती है—इरशाद। यदि शायर का कोई खास प्रेमी या मान्य व्यक्ति वहाँ हुआ तो वह उसका नाम लेकर कहता है,—साहब मुलाहज़ा फ़रमाइये। वे आकर्षित होते हैं। प्रायः वे भी “इरशाद हो” कहते हैं। इतनी पेशबंदी के बाद शायर ने एक शेर पढ़ा। अगर वह अच्छा शेर हुआ, और उसने श्रोताओं के कलेजे कतर दिये तो लोग यकायक चीख़ उठते हैं—वाह वा, वाह वा, क्या ख़ुब कहा है; ला जवाब शेर है; कलेजा निकाल कर रख दिया है; मुक़र्रर इरशाद; मुक़र्रर इरशाद; सुबहान अल्ला; क्या अच्छी तबीअत पाई है; ज़रा फिर कहिये; आदि प्रशंसा-सूचक वाक्यों की झड़ी लग जाती है। उधर तो श्रोता प्रशंसा करते हैं, इधर शायर का यह हाल कि वह ज़रा झुककर जिधर-जिधर से तारीफ़ की आवाज़ें आती हैं, उधर-उधर घूम-घूम कर दाहिने हाथ की हथेली को बार-बार माथे तक ले जाकर सलाम करता रहता है। जब इस कसरत से छुट्टी मिलती है, तब शायर दूसरा शेर पढ़ता है। फिर वही तारीफ़ के वाक्य उड़ने लगते हैं। तालियाँ भी पीटी जाती

हैं। कहकहे और चहचहे से गूँज उठता है। जोश में आकर लोग खड़े भी हो जाते हैं और शायर की ओर हाथ उठाकर कहते हैं—आपने तो गज़ब कर दिया; आपका यह शेर लाख रुपये का है; कलम चूम लेने को जी चाहता है। और खूब खूब की आवाज़ तो खूब ही आती है। उधर शायर को बार-बार सिर झुका-झुकाकर, हथेली को मुँह के सामने लेजा-लेजाकर अपनी नम्रता दिखानी पड़ती है। शायर हाथ ही से सज्जाम नहीं करता, बल्कि मुँह से “अदाबर्ज़ है” भी कहता जाता है। जिसके शेर को लोग दो बार, तीन बार सुनते हैं; वह अपना अहोभाग्य मानता है। बड़े शायर अपने शागिर्दों को भी साथ ले जाते हैं। वे शागिर्द तो अपने उस्ताद के शेरों पर और भी आसमान सिर पर उठा लेते हैं। कभी-कभी दो प्रतिद्वंदी शायर जब मशायरे में आ जाते हैं, तब तो और भी मज़ा आता है। तरक़दार लोग वह नारे लगाते हैं कि मजलिस के बाहर के लोगों को एक हंगामा-सा मालूम होता है। पहले के शायर तलवार और छुरी-कटार भी बाँधकर मशायरे में जाया करते थे। कोई-कोई तो तमंचे भर के बैठा करते थे। कभी-कभी तलवारें ग्यान से निकल भी पड़ती थीं। पर अब पुलिस के भय से वह मज़ा ही जाता रहा। गज़ल के अख़ीर में शायर को फिर कहना पड़ता है—मक़ता अर्ज़ है। श्रोताओं में से कोई कहता है—इरशाद। ऐसा ही तमाशा प्रत्येक शायर के उठने पर होता है। मशायरे में सचमुच बड़ी चहल-पहल रहती है। थोड़ी देर के लिये आदमी अपने सांसारिक कष्टों को भूल जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि शेर सुनकर करुणा या हर्ष के मारे लोग मूर्च्छित हो गये हैं। मैंने एक मशायरे में एक शेर से प्रभावित होकर एक मौलाना को घंटों मूर्च्छित पड़े देखा था। पता नहीं, पाखंड था या सच।

कभी-कभी जब कोई शायर बहुत अच्छी, दिल को फड़कानेवाली, तबीयत को हुलसानेवाली, कलेजे में तीर की तरह चुभनेवाली कोई गज़ल पढ़ते हैं, तो बाक़ी शायर अपनी-अपनी गज़लें फाड़कर फेंक देते हैं और कहते हैं कि अब इसके आगे कुछ पढ़ना फुज़ूल है। यह कहकर कुछ

हँस भी देते हैं। पढ़नेवाला शायर इसे अपना बहुत सम्मान समझता है। वह जीवन भर इस घटना को याद रखता है, और अपने मित्रों और शागिर्दों के सामने इसकी चर्चा भी करता है।

मशायरे में किसी-किसी उर्दू शायर का ग़ज़ल पढ़ने का ढंग बहुत ही आकर्षक और दर्द से भरा होता है। श्रोताओं पर उसका भी असर पड़ता है।

उर्दू-कविता

कविता एक कला है जो उतनी ही पुरानी है, जितनी पुरानी मनुष्य जाति है। असभ्य और अशिक्षित कही जानेवाली जातियों में भी यह-कला किसी न किसी रूप में मौजूद है। यह वह मैजिक लैन्टर्न है, जो घने अंधकार ही में अधिक साफ़ और काम की होती है। जैसे-जैसे ज्ञान का उजाला बढ़ता जाता है वैसे-वैसे कविता की कला मंद पड़ती जाती है। क्योंकि समाज स्वयं कवित्वमय हो जाता है। कविता का कोई विषय उसके लिये नया नहीं रह जाता। यही कारण है कि समाज की उन्नत दशा में वैसे कवि नहीं पैदा होते, जैसे उसकी प्रारंभिक दशा में होते हैं। इस विचित्रता का भी कारण है। वह यह है कि प्रारंभिक दशा में जब मनुष्य का मस्तिष्क घटनाओं के ज्ञान से खाली होता है, तब वह प्रकृति की अद्भुत लीलाओं को देखकर चकित और आनंदित होता है। वही आनंद वाणी के द्वारा फूट निकलता है। वही कविता है। कविता के द्वारा प्रकृति समाज में मनोविकारों को जागृत करती है और संसार को चलाती है। यह कला मनुष्य-निर्मित नहीं, बल्कि प्रकृति का दान है। यह प्रकृति की कही हुई वह कहानी है, जिसे मनुष्य-जाति ने वाल्यावस्था में सुनकर अपनी जवानी का स्वप्न तैयार किया था। यह कला प्रकृति की वह उँगली है, जो मस्तिष्क की गाँठें खोलती है और प्रकृति के कमरों के परदे उठाती है। मनुष्य को इस कला के लिये गर्व करना ही न चाहिये; क्योंकि यह उसके वश की चीज़ नहीं! जिसे प्रकृति देती है, वही इसे पाता है। प्रत्येक समाज को प्रकृति थोड़े से ऐसे व्यक्ति देती है, जिनके हाथ में कविता

का दीपक होता है, और जो समाज को राह दिखलाते हैं। सद्य मनुष्य वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, शेख़ सादी और शेक्सपियर नहीं हो सकते।

कविता एक ऐसी कला है जो केवल मनोरंजक ही नहीं, बल्कि अत्यंत उपयोगी भी है। चित्र और मूर्ति बनाने की कलाओं में मनोरंजन का अंश उनकी उपयोगिता से कहीं अधिक है। गाने की कला में भी मनोरंजन की मात्रा से उपयोगिता बहुत है। पर कविता की कला जहाँ मनुष्य का मनोरंजन करती है, वहाँ उससे कई गुना अधिक लाभ भी पहुँचाती है। कविता ऐसे पुरुष तैयार करती है, जिनका इतिहास लिखा जाता है। कविता ऐसा समाज तैयार करती है, जिनसे इतिहास बनता है। कविता भक्तों को भगवान की, मनुष्य को कर्तव्य की, खेत में काम करते हुये किसान को गृहस्थी की और जीवन-संग्राम से उद्विग्न संसार को परस्पर सहयोगिता की याद दिलाती है। अन्य कलाओं में यह क्षमता नहीं है।

हम किसी कला को उसकी उपयोगिता से अलग नहीं कर सकते। कला में कुछ उपयोगिता होने ही से मनुष्य उसकी ओर आकर्षित होता है। केवल मनोरंजन भी तो कला की उपयोगिता ही है। हम मानते हैं कि यदि किसी शिल्पी ने शेर की एक मूर्ति बनाई, तो हमें यह देखना चाहिये कि उसमें शिल्प-चातुर्य कितना है। अर्थात्, कला को कला की दृष्टि ही से देखना चाहिये। शेर समाज के लिये उपयोगी है या हानिकारक, इस दृष्टि से उसे न देखना चाहिये। पर यदि वह शेर मनुष्यों को खाने भी लगे तो? तब तो उस कला का आदर मनुष्य-जाति नहीं कर सकती। कला की दृष्टि से तो सभी फूल सुन्दर होते हैं; पर जिनमें सौन्दर्य के साथ सुगन्ध भी है, वे ही विशेष आदर के पात्र हैं। यही दशा कविता की कला की भी है। यदि कविता से मनुष्य का मनोरंजन होता रहा और हृदय और मस्तिष्क पर उसका अच्छा प्रभाव भी पड़ता रहा, वहाँ तक तो मनुष्य के लिये वह लाभप्रद है; पर यदि उससे मनोरंजन तो हुआ, पर उस मनोरंजन से शराब, अफीम या भाँग का गुण पैदा हुआ, तो वह मनुष्य-

जाति के लिये उपयोगी नहीं कही जा सकती । वह नशे की चीज़ों के समान त्याज्य है ।

कविता में भाषा मुख्य है या भाव ? इसका निर्णय करना उतना ही कठिन है, जितना

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े , काके लागूँ पाँय ।

बलिहारी गुरु आपने , जिन गोविन्द दिया लखाय ॥

इस दोहे में यह पता लगाना कि गुरु बड़े हैं या गोविन्द, एक रहस्य की बात है । भाषा गुरु है और भाव गोविन्द हैं । भाषा न हो तो भाव का पता भी न चले, और भाव न हो तो भाषा को कोई पूछे भी नहीं । दोनों का यही-रहस्य है ।

हिन्दू-जाति का इतिहास कवित्वमय है । हिन्दू-जाति कविता ही की गोद में पलकर बड़ी हुई है । इस जाति की नस-नस से कविता का तार बजता है । हल जोतना, बोना, निराना, आटा पीसना, झाड़ू देना, पशु चराना, जन्म, उपनयन, विवाह, संध्या, हवन आदि बड़े से बड़े और छोटे से छोटे काम को इस जाति ने कविता से सम्बद्ध करके उन्हें सरस, सुगम, सुखद और सुन्दर बना लिया । इस जाति के तो दातुन करने, हाथ धोने और नहाने, खाने तक के नियम भी कविता की भाषा में लिखे गये हैं । इस जाति के इतिहास से कविता का इतिहास अलग किया ही नहीं जा सकता ।

मुसलमानों में भी कविता का प्रचार उनके आदि काल से है । अरब में इतने अधिक कवि हुये, जितने संसार की किसी जाति में शायद ही हुये होंगे । फ़ारस तो कविता की क्रीड़ा-भूमि ही है । फ़ारसी जैसी मधुर भाषा संसार में विरली ही होगी । वैसी ही उसकी कविता भी अमृत की तरंगिणी है । फ़ारसी में सब रसों की रसीली कवितायें हैं । उर्दू के शरीर में फ़ारसी ही का प्राण छूटपटा रहा है ।

यद्यपि कुरान में कविता करने की सुमानियत है, पर मनुष्य प्रकृति के अधीन है, प्रकृति मनुष्य के अधीन नहीं । प्रकृति ने रुकावट होते हुये

भी मुसलमानों में ऐसे-ऐसे कवि उत्पन्न किये, जिनकी गणना संसार के उच्च श्रेणी के कवियों में होती है। मुसलमान अरब से निकलकर जहाँ-जहाँ गये, अपने मशायरे साथ ले गये, और उन्होंने कविता को अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना रक्खा।

हिन्दुस्तान में मुसलमानों का शासन बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। यद्यपि उनकी भाषा के बहुत से शब्द उनके कई शताब्दी पहले यहाँ आ चुके थे, पर उन्होंने औरंगज़ेब के समय तक उन शब्दों से कुछ काम नहीं लिया था। वे शब्द गुप्तचर की तरह हिन्दुस्तान की भाषा में घुसकर घर-घर में जा पहुँचे थे और किसी संगठन की राह देखते थे। वली और उसके पहले के कुछ कवियों ने उन शब्दों से मिश्रित हिन्दी में कविता करनी शुरू की और उन शब्दों से एक अलग भाषा ईजाद की। उनका प्रयत्न धीरे-धीरे उन्नति करता गया और उनकी वह नव-निर्मित भाषा बिल्कुल स्वतन्त्र हो गई।

चूँकि उर्दू का विकास दिल्ली में हुआ था, इसलिये दिल्ली ही की बोलचाल और महावरे प्रामाणिक माने जाते हैं। प्रामाणिकता का दूसरा स्थान लखनऊ भी है। दिल्ली के शायर जब अपने उजड़े हुये वतन को छोड़कर लखनऊ में जाकर बसे, तब उन्होंने लखनऊ की बोल-चाल में भी दिल्ली के महावरे भर दिये। अब महावरों की प्रामाणिकता के लिये दिल्ली के बाद लखनऊ ही का नम्बर है। यद्यपि दोनों स्थानों की बोल-चाल में स्त्रीलिङ्ग-पुल्लिङ्ग का थोड़ा मतभेद है, पर वह धीरे-धीरे घटता जा रहा है। और आशा है कि थोड़े ही दिनों में भाषा का रूप स्थिर हो जायगा।

उर्दू भाषा को सुधारने में उर्दू-कवियों ने जो परिश्रम किया है, हिन्दी में उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उर्दू-कवियों ने शुद्ध, सुबोध और महावरेदार भाषा लिखने में कमाल कर दिया है। उनके भावों तक पहुँचने के लिये भाषा सहायक होती है, न कि बाधक। हिन्दी में क्रिया कहीं है, कर्ता कहीं है, कर्म कहीं है, विशेषण कहीं हैं; पर उर्दू कविता में

सब ठीक-ठीक स्थान पर इस तरह बैठा दिये जाते हैं कि उन्हें ढूँढ़ना नहीं पड़ता। भाषा को इस तरह साफ़-सुथरी बनाने के लिये उर्दू-कवियों ने बड़ा प्रयत्न किया है। एक-एक शब्द पर उनके यहाँ बरसों बहस छिड़ी रहती थी। शब्दों के सुन्दर प्रयोग पर मशायरों में वाहवाही मिलती थी और अशुद्ध प्रयोग पर आक्षेप होते थे।

उर्दू-कविता में शब्दों ही का खेल तो है। उसी के लिये वह आदरणीय है। भाव तो दो-तीन सौ वर्षों से प्रायः एक ही से रहे हैं। एक ही भाव शब्दों की अलग-अलग पोशाक पहनकर खड़े हैं। जिसे जो पोशाक अच्छी लगती है, वह उसी की तारीफ़ करता है।

उस्ताद करने की प्रथा से भी उर्दू-भाषा के परिमार्जन में बड़ी सहायता मिली है। सर्वसाधारण में उस्ताद ही प्रामाणिक माने जाते थे। उनको प्रतिदिन अपने शागिर्दों की कविता का संशोधन करना पड़ता था। इससे भाषा-सम्बन्धी काटछाँट बराबर जारी रहती थी। परिणाम यह हुआ कि उस्तादों की ख़राद पर चढ़कर उर्दू-भाषा साफ़, चिकनी और मज़ेदार हो गई।

हिन्दी में 'गुरु बिन होय न ज्ञान' का उपदेश तो है, और सीखनेवाले गुरु करते भी हैं, पर गुरु और शिष्य किसी में वह लगन, वह उत्साह नहीं पाया जाता, जो उर्दू के उस्तादों और शागिर्दों में होता है। यही कारण है कि जो सफलता उर्दू-वालों ने सौ-दो सौ वर्षों में कर दिखाई, उसे हिन्दी-वाले चार-पाँच सौ वर्षों में भी न प्राप्त कर सके।

भाषा के लालित्य की ओर हिन्दी-वालों का ध्यान ही कम रहा। वे सदा भाव ही में मग्न रहे, और उसमें उनकी बराबरी उर्दू वाले नहीं कर सकते। इससे हम वेधड़क यह कह सकते हैं कि हिन्दी की कविता भाव-प्रधान है और उर्दू की कविता भाषा-प्रधान।

(४६)

उर्दू-कविता में वर्णित मुख्य विषय

आशिक, माशूक, बाग, सहारा, दरिया, महफिल, गम, आसमान, खिन्न, शैतान, बिरहमन, शेख, फरहाद और शीरी, मन्सूर, कैस या मजनूँ और लैला, यूसुफ और जुझेला, जाहिद, वाइज़ या नासेह, बुत, शराब, हूर या परी, क्रातिल, क्रयामत, काफ़िर इत्यादि ।

सब के अलग-अलग विवरण इस प्रकार हैं—

आशिक के विशेषण

बीमार, बेखबर, आवारा, इश्क का पुतला, दीवाना, बेकरार, रोने-वाला, बदनाम, वक्रादार, जफ़ाकश, गमज़दः, ज़माने का सताया हुआ, बदबस्त, रंजीदा, शराबी, मदहोश, ज़ईफ़, रक़ीबों का दुश्मन इत्यादि ।

माशूक के विशेषण

बेवफ़ा, बेरहम, जालिम, क्रातिल, सय्याद, ज़ल्लाद, हरजाई, बदखू, बदज़बान, बदचलन, बदगुमान, बेमुरव्वत, काफ़िर, बुत इत्यादि ।

आशिक के काम

आसमान, ज़माना, भाग्य और सितारों की शिकायत; भक्त, उपदेशक और सूफ़ी को खोटी-खरी सुनाना; शराबी, शराब बेचनेवालों, शराब पिलानेवालों और नशे की तारीफ़ करना; ईमान, इसलाम और भक्ति और धार्मिकता से घृणा प्रकट करना; कुफ़ और लामज़हब होने से प्रेम प्रकट करना; इश्क और आवारगी को विद्या, बुद्धि और राज्य से बढ़कर बताना; माशूक की गली में पागल की तरह घूमना; उसके मकान की दीवार के साये में बैठे रहना; ख्वाब देखना; मर जाने पर क़ब्र में से माशूक को माँकना; बुतपरस्ती को मुसलमानियत से बढ़कर बताना; बोसा लेना आदि ।

(५०)

माशूक के काम

आशिक को कत्ल करना; एक आशिक को घायल छोड़कर उसके रक्तीब से मिलना; आशिक की क़म्र पर जाना; मुँह बिचका देना; ठोकर लगा देना; रूठ जाना; मन जाना; गालियाँ देना; गुस्ताखी और शरारत करना; बेवफ़ा होना; आशिक की शिकायत करना इत्यादि ।

माशूक का नखशिख

सूरत—हूर, परी, चोंद, सूरज, गुल, बाग़, जन्नत आदि ।

आँख—नरगिस, आहू (मृग), बादाम, जादूगर, मस्त आदि ।

जुल्फ़, पलक, अदा—साँप, तीर, तलवार आदि ।

भौं—कमान ।

चिबुक—कुँआँ ।

दौत—मोती ।

आँठ—लाल, याक़ूत, पंखड़ी, अमृत आदि ।

मुँह—गुंचा ।

कमर—बाल ।

क्रद—सरो, सनोबर, शमशाद, क़यामत आदि ।

गति—बला, आक़त, क़यामत आदि ।

शृङ्गार की चीज़ें—दर्पण, हिना, सुर्मा, काजल, मिस्सी, पान, क़बा, चीरा, पगड़ी, बुक़्रा, नक्राब, चादर, चोटी आदि ।

बाग़

बहार, ख़िज़ाँ, सरो, कुमरी, गुल, बुलबुल, सय्याद, गुलचों, बाग़बान, घोंसला, जाल, पिंजड़ा, ख़ार इत्यादि ।

सहरा

वादी, चश्मा, बहता पानी, सब्ज़ा, प्यास, धूल, सरसर, काँटे,

(२१)

ढाकू, राह दिखानेवाला, काफ़िला, लैला-मजनूँ, वहशत, जुनूँ, इत्यादि ।

दरिया

किस्ती, मरलाह, मौज, किनारा, हुबाब, वूँद, मछली, डुबकी इत्यादि ।

महफ़िल

शमा, परवाना, शराब, कबाब, प्याला, मीना, सुराही, शराब के सटके, नशा, खुमार, साक़ी, दौर, गाना, चंग, मिज़राब, इत्यादि ।

ग़म

रोना, आह, बेचैनी, दर्द, ईर्ष्या, शौक़, जुदाई, याद करना, धीरज धरना, हसरत, रंज, ग़म, अलम, दाग़, ज़र्रम, ख़लिश, तपिश, क़ब्र, क़फ़न, जनाज़ा इत्यादि ।

आसमान

उदूँ के शायरों का यह ख़याल है कि आसमान चक्र की तरह घूमा करता है, और वही आशिकों पर आफ़तें लाता है । इससे वे अक्सर उसे जली-कटी सुनाया करते हैं ।

कह रहा है आसमाँ यह सब समाँ कुछ भी नहीं ।

पीस दूँगा एक गर्दिश में जहाँ कुछ भी नहीं ।

जौक

ख़िज़्र

हज़रत ख़िज़्र एक पैग़म्बर हैं जो भूले-भटकों को राह बताया करते हैं ।

ख़िज़्रो मसीह काटते हैं रश्क से गला ।

तू भी तो कर शहीदों की अपनी ज़ियारतें ॥

आतिश

(५२)

शैतान

शैतान एक क्रूरिश्ता था, जिसने खुदा के कहने पर भी आदम को सिजदा नहीं किया ।

खुदा ने उसे बिहिश्त से निकाल दिया, तब से वह संसार के मनुष्यों को खुदा के विरुद्ध बहकाया करता है । सच्चे मुसलमान शैतान के बहकावे में नहीं आते ।

गया शैतान मारा एक सिजदा के न करने में ।

अगर लाखों बरस सिजदा में सर मारा तो क्या मारा ?

ज़ौक

बिरहमन

उर्दू के शायर को मूर्तिपूजक हिन्दुओं के लिये जब कुछ कहना होता है, तब वह बिरहमन (ब्राह्मण) को संबोधन करके कहता है ।

ऐ बिरहमन हमारा तेरा है एक आलम ।

हम ख़्वाब देखते हैं तू देखता है सपना ॥

अकबर

शेख

जैसे हिन्दुओं के लिये उर्दू के शायरों ने बिरहमन को पकड़ रक्खा है, वैसे ही मुसलमानों के लिये 'शेख' को । मुसलमानी मज़हब का जहाँ मज़ाक उड़ाना होता है, वहाँ शेखजी को संबोधन किया जाता है ।

वे कहते हैं मैं पीने को तू पी नहीं सकता ।

ऐ शेख यह अज़्हाब का डर है कि नहीं है ।

अकबर

शेखजी के दोनों बेटे बाहुनर पैदा हुये ।

एक हैं खुफ़िया पुलिस में एक फ़ौसी पागये ।

अकबर

(५३)

पधारें शेख काबे को हम इंगलिस्तान देखेंगे ।
वो देखें घर खुदा का हम खुदा की शान देखेंगे ।

अकबर

फरहाद और शीरी

इश्क की चर्चा में उर्दू के शायर फरहाद और शीरी का नाम भी लिया करते हैं। शीरी ईरान की एक सुन्दरी थी, जिसपर वहाँ का बादशाह खुसरो आसक्त था। पर शीरी एक चीनी शिल्पकार फरहाद को चाहती थी। और फरहाद भी उसपर जी-जान से क्रिदा था। लेकिन शीरी की शादी खुसरो ही से हुई। शीरी फरहाद के लिये व्याकुल रहती और रोया करती थी। बादशाह को जब यह मालूम हुआ, तब उसने शीरी से कहा कि अगर फरहाद का प्रेम सच्चा है तो वह पहाड़ काटकर महल तक नहर या रास्ता बना दे, तब मैं तुमको उसे सौंप दूँगा। शीरी ने फरहाद को सूचना दी। फरहाद ने रात-दिन कड़ी मेहनत करके पहाड़ को काटकर रास्ता बना दिया। बादशाह को ऐसी आशा नहीं थी। फरहाद की कामयाबी देखकर उसने उसके पास यह संदेशा भेज दिया कि शीरी मर गई। यह सुनकर फरहाद ने आत्म-हत्या कर ली।

फरहादो-कैस गुजरे अब शोर है हमारा ।
हर कोई अपनी नौबत दो दिन बजा गया है ॥

ज़ौक

मन्सूर

मन्सूर ईरान का एक सूफ़ी था। वह 'अनलहक' अर्थात् 'मैं खुदा हूँ' कहा करता था। इस पर उसे नास्तिक कहकर सूली दे दी गई। पर वह अन्त समय तक अपनी बात पर डटा रहा। उर्दू के शायर उसक दृढ़ता की अक्सर तारीफ़ किया करते हैं।

(२४)

कहा मन्सूर ने खुदा हूँ मैं ।

डारविन बोले बूझना हूँ मैं ॥

अकबर

कैस या मजनूँ और लैला

लैला और मजनूँ का किस्सा बहुत मशहूर है । मजनूँ का असली नाम कैस था, लेकिन वह एक अरब रमणी लैला के पीछे दीवाना हो गया था, इससे उसका नाम मजनूँ पड़ गया । उर्दू के शायर जहाँ इश्क की चरचा करते हैं, वहाँ लैला और मजनूँ की मिसाल देते हैं ।

ये मजनूँ है, नहीं आहू है लैला !

पहनकर पोसतीं निकला है घर से ।

जिसे तू सींग समझे है, ये हैं खार ।

लगे हैं पाँव में निकले हैं सर से ॥

नसीर

यूसुफ़ और जुलेखा

यूसुफ़ मुसलमानों के एक पैगंबर का नाम है, जो बड़े ही सुन्दर थे । एक बार उनके भाइयों ने उनको मिश्र के एक सौदागर के हाथ बेच डाला । सौदागर ने उन्हें लेजाकर मिश्र के राजा के हाथ बेचा । राजा की स्त्री जुलेखा यूसुफ़ को देखते ही उन पर आसक्त हो गई । पर यूसुफ़ उसकी प्रार्थना पर राज़ी न हुये । इससे चिढ़कर उसने उन्हें कैदखाने में डलवा दिया । अंत में राजा को सब भेद मालूम हुआ । तब उसने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाकर मिश्र की राजगद्दी ही दे दी ।

उर्दू के शायर सुन्दरता और भाग्य की खूबी के लिये यूसुफ़ का अक्सर नाम लिया करते हैं ।

(५५)

खरीदारों में आशिक अपने नामों को हैं लिखवाते ।
तमाशा है, वो यूसुफ बन के हैं बाज़ार में आये ॥

नासिख

ज़ाहिद

ज़ाहिद कहते हैं परहेज़गार को । उर्दू के शायर ज़ाहिद को ढोंगी
समझकर उसकी खिल्ली उड़ाया करते हैं; क्योंकि वह कल्पित स्वर्ग
की लालसा में पड़कर दुनियावी लुप्त से वञ्चित रहता है ।
गर हो शराब खिलवतो माशूक खूबरू ।
ज़ाहिद तुझे कसम है जो तू हो तो क्या करे ॥

दाश

वाइज़ या नासेह

वाइज़ या नासेह का अर्थ धर्मोपदेशक है । उर्दू के शायर धर्मोप-
देशक से इसलिये चिढ़ते हैं कि वह उन्हें आशिकों को माशूक के प्रेम से
अलग रखने और खुदा के न्याय से उनको भयभीत करने का उपदेश
देता है ।

रंगे शराब से मेरी नीयत बदल गई ।
वाइज़ की बात रह गई साकी की चल गई ॥

अकबर

बुत

बुत का अर्थ है, मूर्ति । माशूक भी पत्थर की मूर्ति की तरह कठोर
हृदय का होता है, इससे उर्दू के शायर उसे भी 'बुत' कहा करते हैं ।

इलाही एक दिल किस-किस को दूँ मैं ।
हज़ारों बुत हैं यों, हिन्दोस्तान है ॥

आतिश

शराब

मुसलमानी धर्म में शराब हARAM होने पर भी उर्दू के शायर उसकी प्रशंसा करते हैं। माशूक के नज़रों से आजिज़ आकर ग़म-ग़लत करने के लिये आशिक़ शराब पीने लगता है। इश्क़ और शराब के नशे में इतनी समानता है कि एक दूसरे को मिसाल बन गया है। इसी से शराब पिलानेवाले 'साक़ी' को 'माशूक़' भी कहा जाता है।

लुफ़े-मै तुमसे क्या कहूँ जाहिद !

हाय ! कम्बख़्त तूने पी ही नहीं ॥

दाग़

हूर या परी

मुसलमानों का विश्वास है कि खुदापरस्त मुसलमान को बिहिश्त में हूर (परी) और ग़िलम़ाँ (ख़ूबसूरत लौंडे) मिलते हैं। उर्दू के शायरों ने इस ख़यालका भी मज़ाक़ उड़ाया है।

ऐसी ज़ब्त को क्या करे कोई ।

जिसमें लाखों बरस की हूर हों ॥

दाग़

परियों का इश्क़ छोड़ा सौदा किया मिसों का ।

तब फाड़ते थे जामे अब कोट सी रहे हैं ॥

अकबर

कातिल

उर्दू के शायर माशूक़ की मिसाल कातिल से भी देते हैं; क्योंकि यह आशिक़ को अपने हाव-भावों से क़त्ल करता रहता है।

हज़रते दाग़ य' है क़च-ए-कातिल उठिये ।

जिस जगह बैठते हैं आप तो ज़म जाते हैं ॥

दाग़

क़यामत

उर्दू के शायर क़यामत, हश्र या महशर का ज़िक्र अपनी शायरी में अक्सर किया करते हैं। मुसलमानों का विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब सारी सृष्टि का नाश हो जायगा, तब खुदा मृतात्माओं का विचार करने बैठेंगे। मुन्किर और नकीर नाम के दो फरिश्ते आत्माओं को उनके आमालनामों के साथ खुदा के सामने पेश करेंगे। पुण्यात्माओं को खुदा बिहिश्त भेजेंगे और पापियों को दोज़ख में डाल देंगे। और जो न पापी होंगे न पुण्यात्मा, वे 'एराक़' नाम के स्थान में जगह पायेंगे। चूँकि माशूक भी आशिक को बहुत तज़ करता है, इससे उसे भी क़यामत के दिन का भय दिखाया जाता है।

जीने ने यहाँ के मार डाला 'आसी'।
सुनते हैं फिर हश्र में जीना होगा ॥

आसी

काफ़िर

उर्दू के कवि माशूक के लिये काफ़िर शब्द का भी प्रयोग किया करते हैं। क्योंकि वह खुदा को नहीं डरता और अपने आशिक के साथ निर्दयता का व्यवहार करता है। कभी-कभी अपने को भी उर्दू का कवि काफ़िर कह लेता है, क्योंकि वह खुदा को छोड़कर बुत (माशूक) की उपासना करता है।

मुसलमानी विश्वास के अनुसार एक ईश्वर को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की उपासना करने वाला काफ़िर कहा जाता है।

मसजिद में उसने हमको आँखें दिखा के मारा।
काफ़िर की देखो शोखी घर में खुदा के मारा ॥

जौक़

(१८)

उपनाम

विषय के अनुकूल ही उर्दू शायरों के उपनाम भी हैं। जैसे—

आतिश, आरजू, आराम, आज़ाद, आशना, आफ़त, आह, आही, अटल, अरमान, असीर, अश्क, अक़सोस, इन्तज़ार, बेताब, बेदम, बेरंग, बेकल, बीमार, बेहोश, बेदिल, बेदार, बेखुद, बेख़बर, बेजान, पाबन्द, परवाना, परेशान, तपिश, तिश्ना, तनहा, जङ्ग, हसरत, हैरान, हैरत, खाक, खाकसार, ख़मोश, ख़ता, ख़लिश, ख़ुमार, खंजर, दाग़, दबंग, दर्दमंद, दर्दी, दिलेसोज़, दीवाना, ज़र्रा, रुसवा, रश्क, रक्तीब, रंज, रिन्द, ज़ार, ज़र्रम, ज़र्रमी, सौदा, शौदा, ज़व्त, फ़कीर, मरीज़ नाक़िस, हसरत इत्यादि।

यही इने-गिने विषय और शब्द हैं, जिनके अंदर सम्पूर्ण उर्दू-शायरी भरी है।

भाव-प्रदर्शन में विशेषता

कल्पना ही कविता का प्राण है। जो कवि अपनी अद्भुत कल्पना से अपने पाठक को एक अनोखे, अचिन्त्य और आनन्दमय प्रदेश में ले जाकर खड़ा कर देता है, वही सच्चा कवि है। केवल किसी घटना-विशेष का वर्णन कर देना कविता नहीं, वह केवल पद्य है।

उर्दू-कविता में भावों को प्रकट करने का जो ढंग है, वह हिन्दी से कहीं अच्छा है। उर्दू-कवि एक-एक शब्द को चुनकर ऐसा बैठा देते हैं कि सुनते ही वे कलेजे में तीर की तरह जा घुसते हैं; तबीअत फड़क उठती है, दिल उछल पड़ता है, और वाह-वा आप से आप गले से फूट निकलता है। हिन्दी के मनोहर भावों को तो चुपचाप भीतर ही भीतर पी जाना पड़ता है। भाषा भावों को चमकाने में बहुत ही कम सहायता देती है। पर उर्दू में भाषा झटपट उठाकर पाठक को भावों की गोद में

(५६)

बैठा देती है, जहाँ वह मस्त हो जाता है। लीजिये, कुछ बानगी देखिये—

गालिब कहते हैं—

उनके देखे से जो आजाती है मुँह पर रौनक।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ॥

पहले यह ध्यान दीजिये कि भाषा ने भाव के पास पहुँचने में कोई बाधा नहीं डाली; बल्कि पूरी सहायता दी। सब शब्द अपने-अपने स्थान पर बैठे हुये अपनी-अपनी ड्यूटी बजा रहे हैं।

अब भाव की बहार देखिये। आशिक़ विरह-वेदना से मर रहा है। माशूक़ को देखते ही आशिक़ के चेहरे पर रौनक़ आगई। जिसे देखकर माशूक़ को इस बात का धोखा हुआ कि बीमार की हालत अच्छी है। देखिये, इसमें कवि की कितनी सूक्ष्म-दर्शिता है !

मोमिन का एक शेर सुनिये—

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता ॥

माशूक़ से आशिक़ कह रहा है कि जब मेरे पास कोई दूसरा व्यक्ति नहीं होता, अर्थात् एकान्त रहता है, तब तुम रहते हो। भावार्थ यह कि एकान्त होते ही माशूक़ की मूर्ति आशिक़ की नज़रों में फिरने लगती है। वह उसी के ध्यान में मग्न हो जाता है। इस शेर में कितनी स्वाभाविकता है, और कहने का ढंग कैसा अनोखा है !

मीर का एक शेर है—

शाम से कुछ बुझा-सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुक़लिस का ॥

(६०)

क्या लाजवाब शेर है । मुफ़लिस के चिराग़ में मीर ने क्या करुणा भर दी है । छोटा-सा शेर, ज़रा-सी बात और उसके भीतर करुणा का समुद्र लहरें मार रहा है ।

हफ़ीज़ कहते हैं—

हाय, क्या चीज़ ग़रीबुलवतनी होती है ।
बैठ जाता हूँ जहाँ छाँव घनी होती है ॥

पे ! पे !! क्या ख़ूब कहा है । ग़रीबुलवतनी में कितना सुख है ! कितनी स्वतंत्रता है ! जहाँ घनी छाया देखो, आजादी से बैठ गये । मीर हसन कहते हैं—

दिल के आईने में है तसवीरे यार ।
जब ज़रा गर्दन मुकाई देख ली ॥

सारा मज़ा “गर्दन मुकाई” में है ।

एक और शायर का कलाम सुनिये—

महफ़िले यार से उठने को उठे तो लेकिन ।
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह ॥

आहा ! कैसी मुशकिल से उठे और कैसे सहज में गिर पड़े ! बयान की खूबी क़ाबिल तारीफ़ है ।

इस तरह की मिसालें कहाँ तक दें । उर्दू-कविता में इस तरह का आनंद बहुत है । मिट्टी के ढेले को भी उस्तादों ने हीरे-जैसा चमका दिया है ।

अतिशयोक्तियाँ

उर्दू-शायरों की-सी अत्युक्तियाँ हिन्दी में किसी कवि ने नहीं कही हैं । बिहारी ने कुछ मोर्चा लिया है ज़रूर; पर वह हैं अकेले और यहाँ तो

झुंड के झुंड कहने वाले हैं। उदू के शायर उड़ते-उड़ते इतना ऊँचे उड़े हैं कि उन्हें अपने उड़ने की जगह भी दिखाई नहीं पड़ती।

एक शायर फरमाते हैं—

अर्ज कीजै जौहरे अन्देशा की गर्मी कहाँ।

कुछ खयाल आया था वहशत का कि सहरा जल गया ॥

हज़रत इतने जल रहे थे कि खयाल भी आग हो रहा था। उसमें जंगल की याद आई तो जंगल ही जल गया। मगर खुद जीते-जागते रहे।

इसी तरह का एक शेर नासिख ने भी कहा है—

है वो परकालए आफ़त क़दे मौजू तेरा।

दीजिये उससे जो तशबीह सनोबर जल जाय ॥

नासिख के माशूक का क़द ऐसा आफ़त का परकाला है कि उससे यदि सनोबर की उपमा दी जाय तो उपमा देने मात्र से वह जल जायगा। पता नहीं, नासिख ने कभी माशूक का बोसा लिया था या नहीं।

एक जगह आप और फरमाते हैं—

आफ़ताब उसमें अगर आवे तवा बन जावे।

नूर का दख़ल नहीं मेरे सियहख़ाने में ॥

आपके दिल में इतना घना अंधकार रहता था कि यदि वहाँ सूर्य आवे, तो वह तवे की तरह मालूम हो !

विरहावस्था में नासिख दुबले होते-होते अदृश्य हो गये। माशूक उन्हें देखने आया। उस समय का जिक्र है—

इन्तहाये लाशरी से जब नज़र आया न मैं।

हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाँका चाहिये ॥

(६२)

खटमल और जूँ से भी बहुत छोटे हो गये थे ।

नासिर ने और भी कहा है —

बंद हो जाती हैं सैयारों की आँखें खौफ़ से ।

फँकता हूँ जब मैं दिल से आह आतिशवार को ॥

आप की आह के डर से नत्तन आँखें मूँद लेते हैं ।

मीर कहते हैं —

तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रात की ।

सूराख पड़ गये हैं तमाम आसमान में ॥

आहें क्या थीं, बन्दूक की गोलियाँ थीं । आसमान रूपी छत में लगीं, तो पार हो गईं ।

जुरअत की भी जुरअत देखने योग्य है —

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है ।

कहाँ है ? किस तरह की है ? किधर है ?

सनम के कमर थी ही नहीं । जुरअत से किसी ने कह दिया होगा कि है । इसी संदेह की निवृत्ति के लिये जुरअत ने यह प्रश्न किया है ।

उस्ताद नसीर की उस्तादी देखिये —

य' मजनूँ है, नहीं आहूँ है लैला !

पहनकर पोसतीं निकला है घर से ॥

जिसे तू सींग समझे है, य' है खार ।

लगे हैं पाँव में, निकले हैं सर से

अर्थात्, ऐ लैला, यह हिरन नहीं, मजनूँ है । इसके सिर पर जो तुम्हें सींगें दिखाई पड़ती हैं, वह सींगें नहीं हैं, बल्कि काँटे हैं, जो पैर में चुभे और सिर में निकल आये ।

सौदा ने तो और भी ग़ज़ब ढाया है —

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सबने कह कहकर ।

हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह बहकर ॥

अंदाज़ा लगाइये, कितने आँसू रहे होंगे, जिनका समुन्दर बन गया;
फिर भी सौदा कहते हैं कि 'कुछ' आँसू थे । कैसे अच्छे रोने वाले थे,
निर्दयी काल ने सब को खा डाला ।

ज़ौक का एक शेर है—

न करता ज़ब्त मैं नाला तो फिर ऐसा धुवाँ होता ।

कि नीचे आसमाँ के एक नया और आसमाँ होता ॥

हमारी राय में इसका दूसरा चरण ऐसा होता तो ठीक था—

“कि खाली मच्छरो पिस्सू से यह हिन्दोसताँ होता ॥”

ऐसे शायरों को बज़ाल में बैठा देना चाहिये था, जहाँ मच्छरों ने
क्रयामत पैदा कर रखी है ।

अमीर मीनाई के दिल का हाल सुनिये—

यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर ।

जहन्नुम उगल देगा तुम्हको निगलकर ॥

लाहौलविलाकूबत; ऐसा जलता हुआ दिल है कि जहन्नुम में भी न
पच सकेगा । अच्छा हुआ, हज़रत मीनाई पहले ही दुनिया से चले गये ।
कहीं अंग्रेज़ों के हाथ पड़ते तो अबतक उनके दिल की आग से कितनी
ही मशीनें और इंजन चलते होते और होठलों में खाना पकता होता ।

ज़रा अकबर की भी अकबरी देख लीजिये—

दिला ! क्यों कर मैं उस स्रस्सारे रोशन के मुकाबिल हूँ ।

जिसे खुरशीदे महशर देखकर कहता है मैं तिल हूँ ॥

माशूक के गाल इतने चमकदार हैं कि उन्हें देखकर प्रलयकाल का
सूर्य कहता है कि मैं तो इस गाल का एक तिल हूँ ।

(६४)

अब मियाँ नज़ीर अकबराबादी की सुफ़ देखिए—

मुफ़ जुलफ़ के मारे को न ज़ंजीर पिन्हाओ ।

काफ़ी हैं मेरी कैद को यक मकड़ी का जाला ॥

वाह वा, ऐसे घायल हुये हैं कि मकड़ी के जाले से बाँधे जा सकते हैं ।

बादशाह ज़फ़र खूब बचे—

नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।

कोने कोने ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी, मैं न था ॥

अब ज़रा ग़ालिब की मौज देखिये—

क्या नज़ाकत हैं कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये ।

हमने तो बोसा लिया था ख़्वाब में तसवीर का ॥

माशूक के गाल ऐसे कोमल हैं कि ग़ालिब ने स्वप्न में माशूक के चित्र के गाल को चूमा तो वह नीले पड़ गये । गाल इतने कोमल हैं कि चुम्बन के आघात ही से नीले पड़ गये । और वह चुम्बन भी तसवीर के गाल का । और तसवीर भी स्वप्न में दिखाई पड़ी थी । एक ही शेर में कितना बड़ा इतिहास भर दिया गया है ।

ग़ालिब का एक दूसरा शेर—

शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कहीं ।

दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदन के पाँव ॥

नाज़ुक बदन माशूक के पाँव आज दुख रहे हैं । कहीं वह रात में किसी के स्वप्न में तो नहीं गया था ? कैसी कोमलता है, कुछ कहा नहीं जाता ।

उर्दू के शायरों ने इस तरह की कल्पनायें बहुत की हैं । पर ऐसे वर्णनों में स्वाभाविकता नहीं रह गई । विरहियों की करुणाजनक स्थिति के वर्णन से करुणा उत्पन्न होनी चाहिये, न कि हास्य, जैसा उपर्युक्त शेरों के पढ़ने से होता है ।

रस

हिन्दी की कविता संस्कृत के आधार पर नौ रसों में है। पर उर्दू की कविता में शृङ्गार, करुण, शान्त, भय और वीभत्स ये पाँच ही रस मुख्य हैं। अधिकांश करुण और वीभत्स रस है। हास्यरस में तो शायद नज़ीर का यह एक ही शेर है—

सुबह जब बोल उठा मुग़ेँ सहर कुकड़ूँ कूँ ।
उठ गये पास से वो रह गया मैं दुटखूँ ॥

इश्क

फ़ारसी में इश्क की दो सूरतें हैं, इश्क हकीकी और इश्क मजाज़ी। इश्क हकीकी में भक्ति और संसार की नश्वरता की बातें होती हैं और इश्क मजाज़ी में आशिक-माशूक के चोचले होते हैं।

उर्दू कवियों ने इश्क हकीकी को नापसन्द करके इश्क मजाज़ी का दामन पकड़ा; क्योंकि यही विषय उस समय के मुसलमान-समाज के अनुकूल था।

उर्दू-कविता का प्रभाव

भारत में मुसलमानी बादशाहत के अन्तिम दिनों में ऐशो-इशरत का ऐसा बाज़ार गर्म था कि इश्क हकीकी की ठंडी आहें उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। अतएव जैसा समाज था, वैसे कवि पैदा हुये। समाज के होनहार के अनुकूल उन्होंने वैसी कवितायें लिखीं। तीतरबाज़ी, बटेरबाज़ी, पतंगबाज़ी, रंडीबाज़ी आदि जहाँ बहुत-सी बाज़ियाँ लोगों में घर किये हुये थीं, वहाँ एक शेरबाज़ी भी कई नई बाज़ियों को हमराह लेकर आ घुसी। कद्वदानी का चारा मिलते ही उर्दू-कवियों ने कमाल के हाथ दिखाने शुरू किये। उन्होंने उर्दू को ख़ूब सँवारा; महावरों के भूषण से ख़ूब सजाया; उसे ईरान की शोख़ी, नज़ाकत और चुलबुलापन सिखाया;

उसे गुदगुदाया, हँसाया, खेलाया और उस पर मनुष्य का एक-एक अमूल्य जीवन निसार किया। सब तरह से सज-धजकर, शायरों के कलेजे का खून पीकर, दिमाग चाटकर, वह महफ़िल में आई और रसिकों के गले का हार हुई।

उर्दू-कविता का शरीर तो है हिन्दुस्तान का, पर उसमें प्राण है ईरान का। संस्कृत और हिन्दी के कवियों में यह प्रथा चली आती है कि वे जहाँ स्त्री-पुरुष का प्रेम प्रकट करते हैं, वहाँ स्त्री को पुरुष पर पहले आसक्त बताते हैं। घटना चाहे इसके विपरीत हो, पर नियम प्रायः यही है। रामायण में पहले-पहल सीता के हृदय में राम के लिये प्रेम अंकुरित हुआ दिखाया गया है। भागवत में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-संदेश पहले भेजा। इसी तरह दमयंती नल पर और संयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गई। अंग्रेज़ी कवियों का मार्ग इसके ठीक विपरीत है। वे पहले पुरुष को स्त्री पर आसक्त दिखलाते हैं। उनके देश का सामाजिक नियम भी ऐसा ही है। वहाँ पहले पुरुष ही अपना प्रणय प्रकट करता है। पर उर्दू-कवियों का मार्ग इन दोनों से जुड़ा है। वे पुरुष पर पुरुष को आसक्त बतलाते हैं। यह फ़ारसी की नक़ल है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह फ़ारसी में कहाँ से आया?

एक विद्वान् का कथन है कि यह भाव फ़ारस वालों ने यूनान से लिया। वहाँ की कविता में भी नायिका नहीं है। पर वहाँ की कविता में माशूक के साथ आशिक की उस कुप्रवृत्ति का भाव भी नहीं है, जो फ़ारसी और उर्दू की कविता में है। अनुमान किया जाता है कि फ़ारसी के कवियों ने यूनानी कविता का भाव पहले-पहल सूफ़ियाने ढङ्ग पर ग्रहण किया। पीछे वही बिगड़ते-बिगड़ते अश्लीलता की सीमा पर पहुँच गया, जिससे संसार में एक अप्राकृतिक प्रेम की नींव पड़ी। उर्दू ने यह सभ्यता फ़ारसी से सीखी।

उर्दू-कवियों ने फ़ारसी से आशिक-माशूक ही नहीं लिये, बल्कि

उनके साथ विषय-व्यापार की भी आयोजना की। फ़ारसी का बुलबुल फ़ारस ही में रोता-गाता है। हिन्दुस्तान के बुलबुल से उसका नाम के सिवा और कोई मेल नहीं। उसका रंग-रूप, रहन-सहन, बोली-बानी सब यहाँ से भिन्न है। पर उर्दू के कवि उसके घोंसले के लिये हिन्दुस्तान में होते रहे हैं। पंजाब की बड़ी-बड़ी पाँच नदियों और गंगा, जमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी से अच्छी तरह परिचित होने पर भी उर्दू-कवियों ने फ़ारस और अरब की नदियों ही में हाथ धोये हैं। ईसा, मूसा, मन्सूर, लैली, मजनूँ, शीरीं, फ़रहाद और यूसुफ़ जुलेखा के किस्से भी भारत के नहीं, पर उर्दू ने उन्हें अपने गुलशन में जगह दी है। इस प्रकार पश्चिम का प्रकाश पूर्व में लाकर दिखलाने का प्रयत्न किया गया है।

माशूक की असली सूरत

कुछ लोग यह कहेंगे कि उर्दू-कविता में माशूक पुरुष ही को नहीं, स्त्री को भी कहते हैं। हम थोड़ी देर के लिये इसे माने लेते हैं। इसके पक्ष में हम कुछ प्रमाण भी उपस्थित किये देते हैं—

उस नाक की लौंग सूँघता हूँ ।

हाजत मुझे क्या इलायची की ॥

पदार्थ
अख़बार ।

कील सोने की बने अक्से तिलाई रंग से ।

हल्क़्क़ बीनी की जा रक्खो जो तिनका नाक में ॥

इ नज़्म कि फ़ार
नादिर

कान छिदवाये जो उसने तो ग़श आया मुझको तब
बालेपन ही में किया बस तहो-बाला मुझको ॥

सबा

(६८)

बोझ इतनी चीज़ का क्या दस्ते नाज़ुक से उठे ।

आरसी छत्ता कड़े पहुँची सितारे चूड़ियाँ ॥

नादिर

आ रही जुलूक हवा से जो तेरी पिस्तौं पर ।

अब ने ले लिया आगोश में कुहसारों को ॥

जलाल

तुम्हारी माँग ने लूटा है होशो सबो करार ।

लूटा है शाम के रस्ते में काफिला दिल का ॥

जोश

इन शेरों में ऐसी चीज़ों का वर्णन है जो केवल स्त्रियों से सम्बन्ध रखती हैं । पर ऐसे शेर इने-गिने हैं । उद् के प्रायः सब कवियों ने ऐसे शेर लिखे हैं, जिनमें माशूक को स्पष्टतः पुरुष माना है । उदाहरण के लिये कुछ शेर यहाँ पेश किये जाते हैं—

खत नमूदार हुआ वस्ल की रातें आई ।

जिनका अंदेशा था मुँह पर वही बातें आई ॥

असीर

सब्ज़ए खत है तिलिस्मे हुस्न से मुँह पर अर्याँ ।

वर्ना कब मुमकिन है शोले पर ठहरना काह का ॥

आबाद

साफ़ था जब तक कि खत तब तक जवाबे साफ़ था ।

अब तो खत आने लगा शायद कि खत आने लगा ॥

एक उस्ताद

सेज ऊपर गैर की रहता है अब लोटा हुआ ।

ज़र के लालच इस क़दर वह सीमतन खोटा हुआ ॥

आबरू

रखे इस लालची लड़के को कोई कब तलक बहला ।
चली जाती है फ़रमायश कभी यह ला, कभी वह ला ॥

नाज़ी

प्र० आज़ाद आबेहयात के पृष्ठ ५४ पर लिखते हैं—

“रात को अहले सुहब्रत के जलसे में अश्वल तो साक़ी का आना वाजिब है । फिर माशूक़ बजाय एक नाज़नीन औरत के परीज़ाद लड़का हो ।” इत्यादि

इस अवतरण से भी प्रमाणित होता है कि उर्दू-शायरी का माशूक़ स्त्री नहीं, कोई परीज़ाद लड़का है ।

इस से भी एक बात और विचित्र है कि उर्दू में माशूक़, जो आशिक़ को प्राण से भी प्रिय होता है, ऐसे बुरे विशेषणों से याद किया गया है कि वह प्रेमी है या कोई अत्यन्त निकृष्ट व्यक्ति, यह समझना कठिन हो जाता है ।

हिन्दी में भक्त या प्रेमी अपने उपास्य या प्रियतम को बहुत प्रिय और अच्छे शब्दों में याद करता है । विरह में वह भी झुँझलाता है, पर प्रियतम को गालियाँ नहीं देता । कभी-कभी यह ज़रूर कह देता है कि प्रियतम, तुम बड़े निर्मोही हो, कभी सुध भी नहीं लेते । पर उसे हत्यारा, बेईमान, क्रूर, गुस्ताख़, निर्दयी, ज़ुल्माद, काफ़िर वह कभी नहीं कहता । उर्दू में माशूक़ के लिये यह साधारण-सी बात है । किसी शायर का माशूक़ क्रातिल, काफ़िर, ज़ालिम, बेवफ़ा, सय्याद और हरजाई होने से नहीं बचा है । ऐसा कहने में कुछ मज़ा आता हो, या प्रेम की वृद्धि होती हो, सो बात नहीं है । क्योंकि विशुद्ध प्रेम में अश्लीलता और क्रोध की उत्पत्ति हो नहीं सकती । हाँ, काम-वासना में क्रोध की उत्पत्ति ज़रूर होती है—

“कामात्क्रोधोभिजायते”

उर्दू-कविता में इश्क़ जिस वस्तु का नाम है; वह वास्तव में काम-वासना है, विशुद्ध प्रेम नहीं । संस्कृत और हिन्दी कविता में वीभत्स-रस

शृङ्गार-रस का विरोधी माना गया है। यह स्वाभाविक भी है ! पर उर्दू-कविता में सर्वत्र शृङ्गार के साथ वीभत्स-रस प्रवाहित है। किसी उर्दू-कवि के दीवान को खोल लीजिये तो मालूम होता है मानो किसी क्रसाईखाने में पहुँच गये हैं। कहीं कटार चल रही है, कहीं तलवार बरस रही है, कहीं भाले और बरछियों ने कुहराम मचा रक्खा है, कहीं बिजली गिर रही है, कहीं माशूक़ क्रसाई की तरह आशिकों को ज़बह कर रहा है, आशिक तड़प रहे हैं, गला दबा है, गों-गों कर रहे हैं, चिख्ता रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं, क्रयामत के दिन का भय दिखा रहे हैं, कोई-कोई माशूक़ की तलवार के नीचे गर्दन झुकाये क़त्ल होने को खड़े हैं, कोई खून के आँसू रो रहे हैं, चारोंओर मृत्यु का बाज़ार गर्म है। दीवान में शुरू से लेकर अख़ीर तक इसी प्रकार का वीभत्स दृश्य दिखाई पड़ता है। इस वर्णन से पढ़ने वालों की तबीअत में अच्छी भावना की जागृति हो सकती है या नहीं, यह विचारणीय है।

उर्दू-कविता में सर्वत्र मृत्यु का वर्णन मिलता है। प्रत्येक कवि, प्रत्येक आशिक मरने के लिये मर रहा है, उसे और अभिलाषा ही नहीं है। इससे यदि उर्दू-कविता को मृत्यु-संगीत कहें, तो अत्युक्ति न होगी।

अश्लीलता की तो हद हो गई है। जिस ज़माने में उर्दू-कवियों का दौर दौरा था, उन्हीं दिनों हिन्दी-कवियों में भी शृङ्गार ज़ोरों पर था। सब नायिकाओं के रहस्य-भेद में आत्मा-परमात्मा को भूल बैठे थे। उन्होंने भी अश्लील शृङ्गार की वृद्धि की है। इससे मालूम होता है कि वह ज़माना ही ऐसा था, जब हिन्दू-मुसलमान दोनों शृङ्गार रस में सिर तक डूबे हुये थे।

उर्दू-कविता का समाज पर प्रभाव

उर्दू-कविता का समाज पर प्रभाव कैसा पड़ा ? इस पर भी विचार करना आवश्यक है। कविता एक कला है, और कला में मनोरंजन ही का अंश अधिक रहता है। पर कविता एक ऐसी कला है, जिससे केवल

मनोरंजन ही नहीं होता, बल्कि चरित्र पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। तुलसीदास की कविता का प्रभाव हिन्दुओं के जीवन पर स्पष्ट लक्षित होता है। इसी प्रकार हिन्दी के शृङ्गारी कवियों का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। कविता को लोग मनोरंजन के लिए याद रखते हैं। आवश्यकता पड़ने पर गाते और सुनते-सुनाते भी हैं, और उससे मनोरंजन होता भी है। पर कहने और सुननेवाले के मन पर उसका कुछ न कुछ स्थायी प्रभाव भी पड़ता है। उर्दू-कविता का भी यही हाल है। उर्दू-कविता के जानने-सुननेवालों के जीवन का अध्ययन कीजिये, तो मालूम होगा कि उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो मद्य-मांस का सेवन करते हैं; इश्रक का भी नशा रखते हैं; और रात-दिन खून-खर्चर की चर्चा करते रहने से उनका स्वभाव भी क्रोधी और रक्तप्रिय हो जाता है। यदि यह सब कुछ न हुआ तो मनुष्य बेकार, काहिल, अव्यवस्थित और मरीजे-इश्रक तो हो ही जाता है। नवयुवकों के लिये यह बहुत हानिकारक है। उर्दू-कविता मनुष्य को मृत्यु की ओर ढकेलती है।

जरा अब उर्दू-कविता को मुसलमानी बादशाहत के साथ मिलाकर उसका स्वप्न देखिये। जब भारत में मुगलों का शासन ज़ोरों पर था, तब कविता और गान-विद्या का उद्देश्य केवल मनोरंजन था। बादशाह स्वयं उसमें लिप्त न होते थे। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरङ्गजेब इन चारों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिसने कविता को अपनी प्रसिद्धि का साधन बनाया हो। औरङ्गजेब तो कविता और गाने का शत्रु ही था। पर जब बादशाही का पतन हुआ, फ़ट शायरी ने दरबार पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहआलम से लेकर बहादुरशाह ज़ाफ़र तक के दरबार में हा-हा, हू-हू के सिवा और क्या था? शाहआलम दिल्ली के बादशाह थे। रात दिन आपस की लड़ाई-झगड़े और सत्तनत छिन जाने के भय से परेशान रहते थे। सं० १७८६ में एक रुहेले ने दीवाने-ख़ास में छाती पर चढ़ कर आपकी आँखें निकाल ली थीं। आपने सारा जीवन तकलीफ़ ही में काटा। पर शायरी का शौक आप को भी था। आफ़ताब तख़्तख़ुस था।

शृङ्गार-रस का विरोधी माना गया है। यह स्वाभाविक भी है ! पर उर्दू-कविता में सर्वत्र शृङ्गार के साथ वीभत्स-रस प्रवाहित है। किसी उर्दू-कवि के दीवान को खोल लीजिये तो मालूम होता है मानो किसी क्रसाईखाने में पहुँच गये हैं। कहीं कटार चल रही है, कहीं तलवार बरस रही है, कहीं भाले और बरछियों ने कुहराम मचा रक्खा है, कहीं बिजली गिर रही है, कहीं माशूक क्रसाई की तरह आशिकों को ज़बह कर रहा है, आशिक तड़प रहे हैं, गला दबा है, गों-नों कर रहे हैं, चिख्ता रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं, क्रयामत के दिन का भय दिखा रहे हैं, कोई-कोई माशूक की तलवार के नीचे गर्दन झुकाये क़त्ल होने को खड़े हैं, कोई खून के आँसु रो रहे हैं, चारोंओर मृत्यु का बाज़ार गर्म है। दीवान में शुरू से लेकर अख़ीर तक इसी प्रकार का वीभत्स दृश्य दिखाई पड़ता है। इस वर्णन से पढ़ने वालों की तबीअत में अच्छी भावना की जागृति हो सकती है या नहीं, यह विचारणीय है।

उर्दू-कविता में सर्वत्र मृत्यु का वर्णन मिलता है। प्रत्येक कवि, प्रत्येक आशिक मरने के लिये मर रहा है, उसे और अभिलाषा ही नहीं है। इससे यदि उर्दू-कविता को मृत्यु-संगीत कहें, तो अत्युक्ति न होगी।

अश्लीलता की तो हद हो गई है। जिस ज़माने में उर्दू-कवियों का दौर दौरा था, उन्हीं दिनों हिन्दी-कवियों में भी शृङ्गार ज़ोरों पर था। सब नायिकाओं के रहस्य-भेद में आत्मा-परमात्मा को भूल बैठे थे। उन्होंने भी अश्लील शृङ्गार की वृद्धि की है। इससे मालूम होता है कि वह ज़माना ही ऐसा था, जब हिन्दू-मुसलमान दोनों शृङ्गार रस में सिर तक डूबे हुये थे।

उर्दू-कविता का समाज पर प्रभाव

उर्दू-कविता का समाज पर प्रभाव कैसा पड़ा ? इस पर भी विचार करना आवश्यक है। कविता एक कला है, और कला में मनोरंजन ही का अंश अधिक रहता है। पर कविता एक ऐसी कला है, जिससे केवल

मनोरंजन ही नहीं होता, बल्कि चरित्र पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। तुलसीदास की कविता का प्रभाव हिन्दुओं के जीवन पर स्पष्ट लक्षित होता है। इसी प्रकार हिन्दी के शृङ्गारी कवियों का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। कविता को लोग मनोरंजन के लिए याद रखते हैं। आवश्यकता पड़ने पर गाते और सुनते-सुनाते भी हैं, और उससे मनोरंजन होता भी है। पर कहने और सुननेवाले के मन पर उसका कुछ न कुछ स्थायी प्रभाव भी पड़ता है। उर्दू-कविता का भी यही हाल है। उर्दू-कविता के जानने-सुननेवालों के जीवन का अध्ययन कीजिये, तो मालूम होगा कि उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो मद्य-मांस का सेवन करते हैं; इशक का भी नशा रखते हैं; और रात-दिन खून-खर्चर की चर्चा करते रहने से उनका स्वभाव भी क्रोधी और रक्तप्रिय हो जाता है। यदि यह सब कुछ न हुआ तो मनुष्य बेकार, काहिल, अव्यवस्थित और मरीजे-इशक तो हो ही जाता है। नवयुवकों के लिये यह बहुत हानिकारक है। उर्दू-कविता मनुष्य को मृत्यु की ओर ढकैलती है।

ज़रा अब उर्दू-कविता को मुसलमानी बादशाहत के साथ मिलाकर उसका स्वप्न देखिये। जब भारत में मुगलों का शासन ज़ोरों पर था, तब कविता और गान-विद्या का उद्देश्य केवल मनोरंजन था। बादशाह स्वयं उसमें लिप्त न होते थे। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरङ्गजेब इन चारों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिसने कविता को अपनी प्रसिद्धि का साधन बनाया हो। औरङ्गजेब तो कविता और गाने का शत्रु ही था। पर जब बादशाही का पतन हुआ, फ़ट शायरी ने दरबार पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहआलम से लेकर बहादुरशाह ज़फ़र तक के दरबार में हा-हा, हू-हू के सिवा और क्या था? शाहआलम दिल्ली के बादशाह थे। रात दिन आपस की लड़ाई-झगड़े और सत्तनत छिन जाने के भय से परेशान रहते थे। सं० १७८६ में एक रूहेले ने दीवाने-खास में छाती पर चढ़ कर आपकी आँखें निकाल ली थीं। आपने सारा जीवन तकलीफ़ ही में काटा। पर शायरी का शौक आप को भी था। आफ़ताब तख़्तबुस था।

(७२)

आप फ़रमाते हैं—

सुबह तो जाम से गुज़रती है ।

शब दिल-आराम से गुज़रती है ॥

आक़बत की ख़बर खुदा जाने ।

अब तो आराम से गुज़रती है ॥

उसी तख़्त पर बहादुरशाह ज़फ़र बैठे । वे भी शायर थे । बुतों पर
शौदा थे । आशिक़ थे । ज़ौक़ के शागिर्द थे । तलवार छोड़कर क़लम पर
हाथ रक्खा था कि तबाही आई । पकड़कर नज़ारबन्द कर दिये गये ।
आप की शायरी के भी नमूने देख लीजिये—

न लेता कोई सौदा मोल बाज़ारे मुहब्बत का ।

मगर कुछ जान अपनी बँचकर लेते तो हम लेते ॥

लगाया जाम ओठों से जो उसने मुझको रक्क़ आया ।

कि बोसा इन लबों का ऐ ज़फ़र लेते तो हम लेते ॥

*

*

*

मर गया हूँ मैं किसी की हसरते दीदार में ।

क़ब्र तक लाशा हमारा राह तकता जायगा ॥

*

*

*

दिलो-जौ दीनो-ईमाँ है जो लेना है सनम ले लो ।

करूँगा उज़्र देने में न मैं मुझसे क़सम ले लो ॥

*

*

*

गले में तौक़ बेड़ी पाँव में लड़के लिये पत्थर ।

अजब इक़ शान से ऐ बुत तेरा दीवाना आता है ॥

यह है हिन्दुस्तान के एक बादशाह का क़लाम । भला ऐसे दीवानों
से कहीं बादशाहत चल सकती है ? अक़बर ने क्या ख़ुब कहा है—

कसीदे से न चलता है न यह दोहे से चलता है ।

समझ लो, खूब कारे सलतनत लोहे से चलता है ॥

दिल्ली के बाद लखनऊ में शायरी का रंग जमा । नवाब आसफुद्दौला
साहब को भी इश्क का रोग लगा । आप क्रामाते हैं—

जहाँ तेरा उसकी अलम देखते हैं ।

वहाँ अपना सर हम कलम देखते हैं ॥

जो जलवा सनम तुझमें हम देखते हैं ।

खुदा की खुदाई में कम देखते हैं ॥

गुज़रते हैं सौ-सौ खयाल अपने दिल में ।

किसी का जो नक़्शे क़दम देखते हैं ॥

बुतों की गली में शबो रोज़ “आसफ़” ।

तमाशा, खुदाई का हम देखते हैं ॥

लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह थे । आप “अख़तर”
तख़्तलुस रखते थे । आप के ज़माने में तो उर्दू शायरी का चौद सोलहों
कलाओं से निकला है । अवध के भाग्य-विधाता, सुनिये, क्या क्रामाते
हैं—

नहीं चाहिये क़स्बे फिरदौस ज़ाहिद ।

मुझे है फ़क़त क्यूे जानाँ से मतलब ॥

*

*

*

फ़ाख़ता हूँ गुल सी सूरत का ।

सर्वे आज़ाद हूँ मुहब्बत का ॥

यह तो उस ज़माने के बादशाहों और नवाबों की बातें हैं । साधा-
रण जनता की आशिकी का तो कहना ही क्या ? इस इश्क की दीमक
ने देखते-देखते दो शाही ख़ान्दानों की हुकूमतें चाट लीं । देश तबाह
हो रहा था ; मराठों या अङ्गरेजों का शासन चल रहा था ; लूट, मार,
ठगी, डकैती से प्रजा की रक्षा करनेवाला कोई न था; पर बादशाह बैठे-बैठे

तुक भिड़ाया करते थे । जब दरबार के बाहर लूट मची थी, तब बादशाह लुटेरों को बाँधने के बदले क्राफिया बाँधा करते थे । जब उन्हें यह सोचना चाहिये था कि सल्तनत की क्या हालत है ? कौन दुश्मन किधर से चढ़ रहा है ? कौन मित्र है ? कौन शत्रु है ? तब वे माशूक के खज़र और छूरियों की कल्पित चोट से तड़प रहे थे और घिघयाकर बोसा माँगते थे; या जीते-जागते क़त्ल हो रहे थे ।

उस समय के शायर भी झूठमूठ के खयाली माशूक या बुत की कल्पना करके उसके चारोंओर भाँवरें घूमते थे । उसी के खयाल में मस्त, उसी में शर्क रहते थे । न कहीं कोई माशूक था, न उनकी आँखों से बिजली गिरती थी, न तीर चलते थे, न सैकड़ों क़त्ल होते थे, न जनाज़े और क़ब्र ही का कहीं ठिकाना था । अलग एकान्त कमरे में बैठकर शायर महाशय एक खयाली तूफ़ान पैदा करते थे और इश्क़ नाम का एक रोग शेर रूपी नश्वरों से जीते-जागते सुन्दर तन्दुरुस्त आदमी के शरीर में प्रवृष्ट कर देते थे । जो कल हट्टकट्टा, मुस्तैद, जवाँमर्द, धर्म और जाति का सेवक और देश में स्वराज्य-स्थापन की कल्पना करनेवाला था, वह आज शायरों की बदौलत इश्क़ के रोग में फँसता है । उसकी हिम्मत, उसका कर्तव्य-ज्ञान, उसकी उद्योग-शीतला सब हवा हो जाती है, और वह भी आह-उह करके दिन काटनेवालों के दल में आ मिलता है, बुत-परस्ती अर्थात् लौंडों के साथ इश्क़ को मुसलमानी धर्म और ईमान से बढ़कर बतलाता है, शराब पीता है, न रोज़े रखता है, और न नमाज़ पढ़ता है ।

उर्दू के शायर मुसलमान होते हुये भी मज़हब की पाबंदी नहीं करते थे । प्रायः सब ने इसलाम के विरुद्ध कुछ न कुछ कहा है । कुछ उदाहरण लीजिये—

हर सुबह उठ बुतों से मुझे राम राम है ।
ज़ाहिद तेरी नमाज़ को मेरा सलाम है ॥

हातिम

इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती ।
 काश बनता मैं बरहमन ही मुसलमाँ के यवज्ज ॥
 ताबाँ
 बुतपरस्ती को तो इसलाम नहीं कहते हैं ।
 मातकिद कौन है 'मीर' ऐसी मुसलमानी का ॥
 मीर

मेरी मिसलत है मुहब्बत मेरा मज्दब इश्क है ।
 खाह हूँ मैं काफ़िरों में खाह दीदारों में हूँ ॥
 जफ़र
 कब हक़परस्त जाहिदे जन्नत परस्त है ।
 हूरों प मर रहा है य शहवत परस्त है ॥
 ज़ौक

उन्न सारी तो कटी इश्क़े-बुतों में 'मोमिन' ।
 आख़िरी वक्त में क्या खाक मुसलमाँ होंगे ॥
 मोमिन
 हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन ।
 दिल के ख़ुश रखने को "शालिब" य ख़याल अच्छा है ॥
 शालिब

जिसमें लाखों बरस की हूरें हैं ।
 ऐसी जन्नत को क्या करे कोई ॥
 मुक्तमें ऐ ग़ब्रो मुसलमाँ किसलिये इतना तपाक ।
 काबिले मसजिद न हरगिज़ लायक़े बुतख़ाना हूँ ॥
 दाग़

दाग़ को वस्ल की पिछली रात में मसजिद में से अज़ान की आवाज़
 आई । वस्ल में व्याघात पहुँचने से कुढ़कर, देखिये, आप क्या
 कहते हैं—

(७६)

दी मुअज्जन ने शबे वस्ल अर्जों पिछली-रात ।

हाय, कम्बख्त को किस वक्त खुदा याद आया ॥

पर न तो इन शायरों के विरुद्ध कोई क्रतवा निकालता है, और न ये पत्थर से मार-मार कर मार ही डाले गये ।

मियाँ चिरकीं

उर्दू के चमन बेनज़ीर में खाद डालने वाले मियाँ चिरकीं का नाम उर्दू के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता । क्योंकि चिरकीं का दीवान भी उर्दू-शायरी का एक अद्भुत परिणाम है । “अदबी दुनिया में जिन्दा दिली पैदा करने के लिये” एक साहब ने “दीवान चिरकीं” छपवाया है । मियाँ चिरकीं ने अपने विषय के अनुकूल ही अपना तज़ार्लुस रक्खा था । शायद दुनिया की किसी भाषा में चिरकीं के विषय पर कविता न हुई होगी । लीजिये, मियाँ चिरकीं के दो-चार शेर तो सुन लीजिये । जहाँ आप उर्दू के गुलशन में भीनी-भीनी सुगन्ध की मस्ती का आनन्द उठाते रहे हैं, वहाँ इस खाद का भी तो कुछ मज़ा ले लीजिये—

कब्ज़ की हालत में मियाँ चिरकीं ने यह फ़रमाया था—

क्यों अकड़ता है निकलता क्यों नहीं ।

क्या मैं होवा हूँ तुम्हे खा जाऊँगा ॥

*

*

*

हमेशा रहते हो बेतुलख़ला में तुम चिरकी ।

जहाँ मैं किसको तुम्हारा मकाँ नहीं मालूम ॥

*

*

*

सिरोही खींचकर क़ातिल जिधर को जा निकला ।

हगा हगा दिया सबको पदा पदा निकला ॥

यह चिरकीं का वीरस है ।

*

*

*

शबे फुरकत य गू उछलेगा चिरकीं के तड़पने से ।
सितारे फिटकियाँ, मह छोट, घूरा आसमाँ होगा ॥

*

*

*

उस बुत के आवदस्त का पानी जो हाथ आये ।
चिरकीं सिढ़ी हों, शेखजी उससे वजू करें ॥

*

*

*

पड़ा होगा किसी घूर प चिरकीं ।
पता क्या पूछते हो उसके घर का ॥

जाफर जटल

वली के समकालीन एक जाफर जटल नाम के शायर और हो गये हैं । उन्होंने ऐसी गंदी और अश्लील शायरी की है कि मुँह से पढ़ना और कान से सुनना तो अलग रहा, उसे कलम से लिखने में भी शर्म मालूम होती है । अश्लीलता के कारण ही, सुना है, जटल के दीवान को सरकार ने जूत कर रक्खा है । ये तो उर्दू के आदि कवियों में से हैं । उस समय समाज की ऐसी गिरी दशा थी कि ऐसे शायर पैदा हो सके ।

सब बातों पर अच्छी तरह विचार करके आप देखेंगे कि मजहब के नाम पर मर मिटनेवाले मुसलमानों ने उर्दू के साथ जो सहनशीलता दिखलाई है, वह अद्भुत है, आश्चर्यजनक है ।

दिल्ली को तबाह हालत में छोड़कर शायर लोग लखनऊ पहुँचे । वहाँ भी बुत-परस्ती ने रंग पकड़ा । कितने ही मर्दे-मैदाँ थे, नीमजान हो गये; कितने ही भले-चंगे थे, बिसमिल बनकर तड़पने लगे; कितने ही सुशील और विनयी थे, शब्दों के पीछे मरने-मारने को तैयार हो गये । नवाब के दरबार में दिनरात आशिक-माशूकों के मामले फैसल होने लगे । नवाब लोग राज्य-प्रबंध छोड़कर काफ़िया और रदीफ़ सोचने लगे । परिणाम यह हुआ कि लखनऊ की नवाबी भी जाती रही । कैसी विचित्र बात है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में बुतों को तोड़कर अपनी दुकू-

मत क्रायम की थी; पर बुतों ने भी ऐसा बदला लिया कि सदा के लिये उनकी कमर ही तोड़ दी ।

लखनऊ के उजड़ जाने पर शायर-गण रामपुर पहुँचे । वहाँ भी कुछ ऐसी ही वैसी हालत रही । कुछ बुलबुलों ने उड़ने की हिम्मत बाँधी तो दूर दराज़ हैदराबाद जा पहुँचे । वहाँ इन की क्रढ़ तो हुई, पर दिल्ली और लखनऊ से दूर होने के कारण वह तबाही से बच गया ।

अपनी शायरी का ऐसा कुपरिणाम, जैसा मुसलमान-समाज ने भोगा है, शायद ही किसी जाति को मिला होगा । परन्तु हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि अभी तक उसका पीछा नहीं छूटा है । अब भी सक्ती, अज़ीज, साकिब, महशर, सायल, बेखुद, साहिर, यास, शाद, नानक, सीमाब, नूह, बिसमिल, माजिद, हसरत आदि उर्दू के अच्छे-अच्छे नामी शायर हैं, जो इसी रङ्ग में रँगें हैं, और मशायरों में उनकी अच्छी धाक रहती है । पर अभी तक यह राज़ न खुला कि अब उनका लक्ष्य क्या है ? बली के ज़माने से चले आते हुए एक ही प्रकार के भावों को दुहराने-तिहराने में अब कुछ मज़ा तो रहा नहीं; न उनसे कुछ कला की नवीनता ही प्रकट होती है और न उनके उपयोग से देश या जाति का कुछ करयाण ही हो सकता है । ऐसी शायरी के बारे में, देखिये, प्रोफेसर आज़ाद क्या कहते हैं—

“यह इज़हार क्राबिल अफ़सोस है कि हमारी शायरी चन्द मामूली मतालिव के पन्नों में फँस गई है, यानी मज़ामीन आशिक़ाना, मैझारिये मस्ताना, गुलो गुलज़ार, बहारी रंग व बू का पैदा करना, हिज़्र की मुसीबत का रोना, वस्ले मौहूम पर खुश होना, दुनिया से बेज़ारी, इसी में फ़लक की ज़फ़ाकारी, और ग़ज़ब यह है कि अगर कोई असली माजरा बयान करना चाहते हैं तो भी झयाल इस्त्यारों में अदा करते हैं । नतीजा जिसका यह कि कुछ नहीं कर सकते हैं ।

“उर्दू में जो सरमाया इंशा परदाज़ी का है, फ़ारसी की बदौलत है । उर्दू वालों ने भी आसान काम समझकर और अवाम पसंदी को शरज़

ठहराकर हुस्न वो इश्क़ वग़ैरह के मज़ामीन को लिया । और इसमें कुछ शक़ नहीं कि जो कुछ किया, बहुत ख़ूब किया । लेकिन मज़मून इस क़दर सुस्तेमल हो गये कि सुनते-सुनते कान थक़ गये हैं । वही मुकर्ररी बातें हैं । कहीं हम लफ़्ज़ों को पशोपेश करते हैं, कहीं अदल-बदल करते हैं, और कहे जाते हैं । गोया खाये हुए, बल्कि औरों के चबाये हुये नेवाले हैं, उन्हीं को चबाते हैं और खुश हांते हैं । ख़याल करो, इसमें क्या मज़ा रहा ? हुस्न व इश्क़, सुबहान अल्ला, बहुत ख़ूब । लेकिन दूर या परी गले का हार हो जाय, तो अजीरन हो जाती है । हुस्न वो इश्क़ से कहाँ तक जी न घबराये । और अब तो वह भी सौ बरस की बुढ़िया हो गई ।”

मौलाना हाली की राय भी सुनने लायक़ है—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है ।
 अबस भूड बकना अगर नारवा है ॥
 तो वह महकमा जिसका काज़ी खुदा है ।
 मुकर्रिर जहाँ नेको बद की जज़ा है ॥
 गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे ।
 जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे ॥
 ज़माने में जितने कुली औ नफ़र हैं ।
 कमाई से अपनी वो सब बहरेबर हैं ॥
 गवैये अमीरों के नूरे नज़र हैं ।
 डफ़ाली भी ले आते कुछ माँगकर हैं ॥
 मगर इस् तपेदिक़ में जो मुव्तला हैं ।
 खुदा जाने वो किस मरज़ की दवा हैं ॥
 जो सक्के न हों जी से जायें गुज़र सब ।
 हो मैजा जहाँ गुम हों धोबी अगर सब ॥
 बने दम प गर शहर छोड़ें नफ़र सब ।
 जो दुर जायें मेहतर तो गन्दे हों घर सब ॥

मत कायम की थी; पर बुतों ने भी ऐसा बदला लिया कि सदा के लिये उनकी कमर ही तोड़ दी ।

लखनऊ के उजड़ जाने पर शायर-गण रामपुर पहुँचे । वहाँ भी कुछ ऐसी ही वैसी हालत रही । कुछ बुलबुलों ने उड़ने की हिम्मत बाँधी तो दूर दराज़ हैदराबाद जा पहुँचे । वहाँ इन की कद्र तो हुई, पर दिल्ली और लखनऊ से दूर होने के कारण वह तबाही से बच गया ।

अपनी शायरी का ऐसा कुपरिणाम, जैसा मुसलमान-समाज ने भोगा है, शायद ही किसी जाति को मिला होगा । परन्तु हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि अभी तक उसका पीछा नहीं छूटा है । अब भी सक्ती, अज़ीज़, साकिब, महशर, सायल, बेखुद, साहिर, यास, शाद, नानक, सीमाब, नूह, बिसमिल, माजिद, हसरत आदि उर्दू के अच्छे-अच्छे नामी शायर हैं, जो इसी रङ्ग में रँगें हैं, और मशायरों में उनकी अच्छी धाक रहती है । पर अभी तक यह राज़ न खुला कि अब उनका लक्ष्य क्या है ? बली के ज़माने से चले आते हुए एक ही प्रकार के भावों को दुहराने-तिहराने में अब कुछ मज़ा तो रहा नहीं; न उनसे कुछ कला की नवीनता ही प्रकट होती है और न उनके उपयोग से देश या जाति का कुछ कल्याण ही हो सकता है । ऐसी शायरी के बारे में, देखिये, प्रोफेसर आज़ाद क्या कहते हैं—

“यह इज़हार क्राबिल अफ़सोस है कि हमारी शायरी चन्द मामूली मतालिक के फन्दों में फँस गई है, यानी मज़ामीन आशिक़ाना, मैख़वारिये मस्ताना, गुलो गुलज़ार, बहारी रंग व बू का पैदा करना, हिज़्र की सुसी-बत का रोना, वस्ले मौहूम पर खुश होना, दुनिया से बेज़ारी, इसी में फ़लक की जफ़ाकारी, और ग़ज़ब यह है कि अगर कोई असली माजरा बयान करना चाहते हैं तो भी ख़याल इस्तआरों में अदा करते हैं । नतीजा जिसका यह कि कुछ नहीं कर सकते हैं ।

“उर्दू में जो सरमाया इंशा परदाज़ी का है, फ़ारसी को बदौलत है । उर्दू वालों ने भी आसान काम समझकर और अवाम पसंदी को ग़रज़

उहराकर हुस्न वो इश्क वगैरह के मज़ामीन को लिया । और इसमें कुछ शक नहीं कि जो कुछ किया, बहुत खूब किया । लेकिन मज़मून इस क़दर मुस्तेमल हो गये कि सुनते-सुनते कान थक गये हैं । वही मुकररी बातें हैं । कहीं हम लफ़्ज़ों को पशोपेश करते हैं, कहीं अदल-बदल करते हैं, और कहे जाते हैं । गोया खाये हुए, बल्कि औरों के चबाये हुये नेवाले हैं, उन्हीं को चबाते हैं और खुश हांते हैं । ख़याल करो, इसमें क्या मज़ा रहा ? हुस्न व इश्क, सुबहान अल्ला, बहुत खूब । लेकिन दूर या परी गले का हार हो जाय, तो अजीरन हो जाती है । हुस्न वो इश्क से कहाँ तक जी न बचराये । और अब तो वह भी सौ बरस की बुढ़िया हो गई ।”

मौलाना हाली की राय भी सुनने लायक है—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है ।
 अबस झूठ बकना अगर नारवा है ॥
 तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी खुदा है ।
 मुकर्रिर जहाँ नेको बद की जज़ा है ॥
 गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे ।
 जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे ॥
 ज़माने में जितने कुली औ नफ़र हैं ।
 कमाई से अपनी वो सब बहरेबर हैं ॥
 गवैये अमीरों के नूरे नज़र है ।
 डफ़ाली भी ले आते कुछ मोंगकर हैं ॥
 मगर इस तपेदिक में जो मुब्तला हैं ।
 खुदा जाने वो किस मरज़ की दवा हैं ॥
 जो सक्के न हों जी से जायें गुज़र सब ।
 हो मैज़ा जहाँ गुम हों धोबी अगर सब ॥
 बने दम प गर शहर छोड़ें नफ़र सब ।
 जो ठुर जायें मेहतर तो गन्दे हों घर सब ॥

पै कर जायँ हिजरत जो शायर हमारे ।
कहें मिल के “खसकम जहाँ पाक” सारे ॥

युग-परिवर्तन

मौलाना हाली ने उर्दू-कविता में युग-परिवर्तन कर दिया है । उन्होंने धारा ही पलट दी । उनकी शायरी में न गुलशन के तमाशे हैं, न बुलबुल की फरियाद; न महफिल की आकृत है, न क़व्र और क़फ़न का नज़्ज़ारा । जो कुछ है, स्वाभाविक और सत्य है । उनके रास्ते को पहले तो लोगों ने कम पसन्द किया, पर थोड़े ही समय में वह इतना उपयोगी और आकर्षक हो गया कि अब जो नये शायर निकल रहे हैं, सब उसी रंग में रंगे हुये ।

युग-परिवर्तन में अकबर का भी निराला हाथ है । अँग्रेज़ी सभ्यता की जैसी मीठी चुटकियाँ अकबर ने ली हैं, वैसी कोई क्या ले सकेगा ? साथ ही उन्होंने उर्दू-शायरी पर भी फवती उड़ाई है । एक जगह आप लिखते हैं—

मगरिब ने खुर्दबीं से कमर उसकी देख ली ।

मशरिफ़ की शायरी का मज़ा किरकिरा हुआ ॥

वहा वा, कैसा सुन्दर मज़ाक है । कमर इतनी पतली कि खुर्दबीन से दिखाई पड़ी । पर परिणाम यह हुआ कि कमर का अस्तित्व न मानने वाले पूर्व देश के शायरों की शायरी का मज़ा ही किरकिरा हो गया ।

हाली और अकबर इस नई पगडंडी को सड़क बनाकर चले गये और इक़बाल उस पर खुशबूदार छिड़काव कर गये हैं ।

उर्दू का भविष्य हमें बड़ा ही आशा-पूर्ण दिखाई पड़ता है । हमारा अनुमान है कि थोड़े ही समय में उर्दू की पुरानी आशिकाना शायरी केवल इतिहास-ग्रंथों में रह जायगी । उर्दू को वह गौरव प्राप्त होगा, जो आत्मा को परमात्मा में और बूँद को समुद्र में मिलने में होता है । अर्थात्, उर्दू हिन्दी में मिल जायगी । यह संभावना हमें इसलिये दिखाई पड़ती

(८१)

है कि अब हिन्दी में उर्दू के बहुत से शब्द व्यवहृत होने लगे हैं । उर्दू के नये शायर अब सरल से सरल बोलचाल की भाषा में प्रशंसनीय शायरी करने लगे हैं । उदाहरण—

(१)

कोई नहीं है ग़ैर

कोई नहीं है ग़ैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।

(१)

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, देख सभी हैं भाई-भाई,
भारत माता सब की माता गंगा देवी सब की माई ।

मत रख मन में बैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।

(२)

भारत के सब रहनेवाले, कैसे गोरे, कैसे काले,
नृत-अनृत के रंगड़े पाले, पड़ गये जिससे जान के लाले ।

काढ़े का यह बैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।

(३)

राम समस्त, रहमान समस्त ले, धर्म समस्त, ईमान समस्त ले,
मस्जिद कैसी, मंदिर कैसा ईश्वर का अस्थान समस्त ले ।

कर दोनों की सैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।

(४)

सोचेगा किस मन में बाबा ? क्यों बैठा है बन में बाबा ?

खाक मँजी क्यों तन में बाबा ? ढूँढ़ ले उसको मन में बाबा !

माँग सभी की खैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।

(५)

धन-दौलत में मन अटकाया, काहे 'बासित' जी ललचाया,

सबसे निराली तेरी माया, करता है क्यों अपना पराया ?

नाहक का यह बैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।

बासित बिस्वानी

(८२)

कूक, पपीहे कूक

(१)

बादल गरजे रात अंधेरी,
सूनी-सूनी दुनिया मेरी,
जीना मेरा हो गया दूभर,

आँख लगे ना भूक ।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक ।

(२)

तू बनवासी खुलकर रोये
मेरा रोना मुझे डुबोये,
तेरी तरह से नेह लगाया

चूक गई मैं चूक ।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक ।

(३)

मैं भी अकेली, तू भी अकेला,
मोह का सागर दुख का रेला,
तेरे गले में 'पी' का फन्दा,

मेरे मन में हूक ।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक ।

वक्ता अम्बालवी

इसी प्रकार यदि हिन्दी-वाले उर्दू के सब रोज़मर्रा के इस्तेमाली शब्दों को अपना कर हिन्दी का भांडार भर लें, तो उर्दू अलग रह नहीं सकती । दोनों आप से आप एक हो जायँगी और हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य की एक बड़ी जड़ कट जायगी । ईश्वर करे ऐसा ही हो ।

उर्दू-गद्य

सं० १८१८ में सैयद मुहम्मद बख्श हैदरी ने तोता कहानी लिखी। इन्हीं ने सं० १८६२ में “दह मजलिस,” “गुलज़ार दानिश,” “तारीख-नादिरा” भी लिखी है। “दह मजलिस” की भूमिका से भाषा की बानगी आगे दी जाती है—

“फिर दिल में गुज़रा कि ऐसे काम को अज़ल चाहिये व और मदद किसू तरफ़ की होय शामिल, क्योंकि बेताईदे समदी बेमददे जनावे अहमदी यह मुश्किल सूरत पज़ीर न होवे और मुराद रिश्तए उमीद में न आवे; लिहाज़ा कोई इस सनअ न हुआ, और अबतक तरजुमे फ़ारसी ब-इबारते हिन्दी नस हुआ।”

इस उद्धरण में “हिन्दी” शब्द ध्यान देने योग्य है। इससे होता है कि हैदरी महाशय अपनी भाषा को, जिसमें उन्होंने लिखी, हिन्दी ही जानते और मानते थे। मीर की मसनवी “इश्क़” का सौदा ने गद्य किया था। उसकी भूमिका के कुछ ये हैं—

“अगर हक़ ताला ने सुबह कागज़ सफ़ेद की मानिन्द शाम करने को यह खाकसारे खलक किया है तो हर इन्सान के फ़ानूस में चिराग़ो होश दिया है। चाहिये कि देखकर नुक्ताचीनी करे, वर्ना ज़हर आलूद से बे अजल काहे को मरे।”

मीर हसन की मशहूर मसनवी ‘सह्रख़बयान’ को मीर बहादुर ने उर्दू गद्य में किया था। इन्हीं ने सं० १८१६ में ‘इख़लाक़े’ नाम की एक किताब भी लिखी थी।

मीर अस्मन ने सं० १८१८-१९ में ‘बाग़ोबहार’ नाम की लिखी। मीर शेर अली “अफ़सोस” ने सं० १८६१ में सा गुलिस्ताँ का अनुवाद “बागे, उर्दू” नाम से किया। इन्हीं ने ‘अ

(८२)

कूक, पपीहे कूक

(१)

बादल गरजे रात अंधेरी,
सूनी-सूनी दुनिया मेरी,
जीना मेरा हो गया दूभर,

आँख लगे ना झूक ।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक ।

(२)

तू बनवासी खुलकर रोये
मेरा रोना मुझे डुबोये,
तेरी तरह से नेह लगाया

चूक गई मैं चूक ।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक ।

(३)

मैं भी अकेली, तू भी अकेला,
मोह का सागर दुख का रेला,
तेरे गले में 'पी' का फन्दा,

मेरे, मन में हूक ।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक ।

वक्ता अम्बालवी

इसी प्रकार यदि हिन्दी-वाले उर्दू के सब रोज़मर्रा के इस्तेमाली शब्दों को अपना कर हिन्दी का भांडार भर लें, तो उर्दू अलग रह नहीं सकती । दोनों आप से आप एक हो जायँगी और हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य की एक बड़ी जड़ कट जायगी । ईश्वर करे ऐसा ही हो ।

(८३)

उर्दू-गद्य

सं० १८१८ में सैयद मुहम्मद बख्श हैदरी ने तोता कहानी लिखी। इन्हीं ने सं० १८६२ में “दह मजलिस,” “गुलज़ार दानिश” और “तारीख-नादिरा” भी लिखी है। “दह मजलिस” की भूमिका से इनकी भाषा की वानगी आगे दी जाती है—

“फिर दिल में गुज़रा कि ऐसे काम को अज़ल चाहिये कामिल और मदद किसू तरफ़ की होय शामिल, क्योंकि बेताईदे समदी और बेमददे जनावे अहमदी यह मुश्किल सूरत पज़ीर न होवे और गौहरे मुराद रिश्तए उमीद में न आवे; लिहाज़ा कोई इस सनअत का न हुआ, और अबतक तरजुमे फ़ारसी ब-इबारेते हिन्दी नसर नहीं हुआ।”

इस उद्धरण में “हिन्दी” शब्द ध्यान देने योग्य है। इससे मालूम होता है कि हैदरी महाशय अपनी भाषा को, जिसमें उन्होंने किताब लिखी, हिन्दी ही जानते और मानते थे। मीर की मसनवी “शोलए इश्क़” का सौदा ने गद्य किया था। उसकी भूमिका के कुछ वाक्य ये हैं—

“अगर हक़ ताला ने सुबह कागज़ सफ़ेद की मानिन्द शाम स्याह करने को यह ख़ाक़सारे ख़लक किया है तो हर इन्सान के फ़ानूसे दिमाग़ में चिराग़ो होश दिया है। चाहिये कि देखकर नुक्ताचीनी करे, वर्ना गज़न्द ज़हर आलूद से बे अज़ल काहे को मरे।”

मीर हसन की मशहूर मसनवी ‘सहख़बयान’ को मीर बहादुर अली ने उर्दू गद्य में किया था। इन्हीं ने सं० १८१६ में ‘इख़लाक़े हिन्दी’ नाम की एक किताब भी लिखी थी।

मीर अम्मन ने सं० १८१८-१९ में ‘बाग़ोबहार’ नाम की किताब लिखी। मीर शेर अली “अफ़सोस” ने सं० १८६१ में सादी की गुलिस्ताँ का अनुवाद “बाग़े उर्दू” नाम से किया। इन्हीं ने ‘आराइशे

(८४)

महफिल” भी लिखी थी। सं० १८५८ में मीरजा अली ने ‘गुलशने हिन्द’ नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें उर्दू-कवियों का जिक्र है। सं० १८५९ में काज़िम अली ने ब्रजभाषा की सं० १७७३ की लिखी हुई शकुन्तला का उर्दू में उल्था किया। इन्हीं ने सं० १८६९ में “दस्तुरे हिन्द” नाम की एक और किताब लिखी है, जिसमें हिन्दू-मुसलमानों के त्योहारों का जिक्र है। सं० १८६२ में मजहर अली ने बैतालपचीसी को उर्दू में लिखा।

डॉक्टर गिलक्रिस्ट ने सं० १८५५ में अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी का एक कोप तैयार करके छपाया। सं० १८६५ में डॉक्टर टेलर ने एक हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी कोप छपाया। सं० १८६६ में ग्लैडन साहब ने फ़ारसी-हिन्दुस्तानी का कोप छपवाया। जान शेक्सपियर ने सं० १८७४ में एक उर्दू कोप तैयार करके छपवाया। सं० १८६४ में इंशा ने उर्दू का सबसे पहला व्याकरण “क़वायद उर्दू” लिखा। इसी संवत् में मौलवी शाह अबुलक़ादिर ने क़ुरान शरीफ़ का तर्जुमा उर्दू में किया। सं० १८९२ से सरकारी दफ़्तरों में उर्दू का प्रचार हुआ। सं० १८९३ में सबसे पहला लीथो प्रेस दिल्ली में खुला। सं० १८९३ में सबसे पहला उर्दू का अख़बार दिल्ली से प्रोफ़ेसर आज़ाद के पिता के सम्पादकत्व में निकला।

इसके बाद उर्दू की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हुई। हिन्दुओं ने उर्दू की उन्नति में बहुत काफ़ी हाथ बटाया। कायस्थों की तो उर्दू मानभाषा ही हो गई थी। काश्मीरी पंडित रतननाथ ‘सरशार’ ने उर्दू में “फ़िसाने आज़ाद” नाम की एक ऐसी दिलचस्प किताब लिखी, जिसका उर्दू में जोड़ नहीं है। काश्मीरियों में अब भी उर्दू का प्रचार बहुत है। अब भी हिन्दुओं में उर्दू के बहुत अच्छे लेखक और कवि मौजूद हैं।

हमारे मुख्य प्रकाशन



कविता-कौमुदी, पहला भाग	३)
कविता-कौमुदी, दूसरा भाग	४॥)
कविता-कौमुदी, तीसरा भाग	३)
कविता-कौमुदी, चौथा भाग	३)
कविता-कौमुदी, पाँचवाँ भाग	३)
कविता-कौमुदी, छठा भाग (प्रेस में)	३)
कविता-कौमुदी, सातवाँ भाग	३)
पथिक, मिलन, स्वप्न	खण्ड काव्य
	प्रत्येक
हिन्दुस्तानी कोष	॥)
जयन्त, प्रेम-लोक	नाटक
	प्रत्येक
तरकस (कहानियाँ)	॥)
रामचरितमानस, सटीक—(टीकाकार—त्रिपाठीजी)	५)
तुलसीदास और उनकी कविता, दो भाग	४॥)
नमूने का गाँव और मिट्टी के सुखदायक घर	१)
हमारा ग्राम-साहित्य	२)
हिन्दी-कविता का विकास	२)
काश्मीर (सचित्र, सजिल्द)	५)
मुस्लिम-संतों के चरित	२)
अयोध्या-कांड सटीक (सजिल्द)	॥)
हिन्दुओं के व्रत और त्योहार	१॥)
युरोप की कहानियाँ	२॥)
पॉकेट डिक्शनरी (हिन्दी-अंग्रेज़ी)	१॥)

बड़ा सूचीपत्र इस पते से मुफ्त मंगाइये—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

(८४)

महफिल” भी लिखी थी। सं० १८५८ में मीरजा अली ने ‘गुलशने हिन्द’ नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें उर्दू-कवियों का जिक्र है। सं० १८५९ में काज़िम अली ने ब्रजभाषा की सं० १७७३ की लिखी हुई शकुन्तला का उर्दू में उल्था किया। इन्हीं ने सं० १८६९ में “दस्तुरे हिन्द” नाम की एक और किताब लिखी है, जिसमें हिन्दू-मुसलमानों के त्योहारों का जिक्र है। सं० १८६२ में मजहर अली ने बैतालपचीसी को उर्दू में लिखा।

डॉक्टर गिलक्रिस्ट ने सं० १८५५ में अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी का एक कोप तैयार करके छपाया। सं० १८६५ में डॉक्टर टेलर ने एक हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी कोप छपाया। सं० १८६६ में ग्लैडन साहब ने फ़ारसी-हिन्दुस्तानी का कोप छपवाया। जान शेक्सपियर ने सं० १८७४ में एक उर्दू कोप तैयार करके छपवाया। सं० १८६४ में इंशा ने उर्दू का सबसे पहला व्याकरण “क़वायद उर्दू” लिखा। इसी संवत् में मौलवी शाह अबुलक़ादिर ने क़ुरान शरीफ़ का तर्जुमा उर्दू में किया। सं० १८९२ से सरकारी दफ़्तरों में उर्दू का प्रचार हुआ। सं० १८९३ में सबसे पहला लीथो प्रेस दिल्ली में खुला। सं० १८९३ में सबसे पहला उर्दू का अख़बार दिल्ली से प्रोफ़ेसर आज़ाद के पिता के सम्पादकत्व में निकला।

इसके बाद उर्दू की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हुई। हिन्दुओं ने उर्दू की उन्नति में बहुत काफ़ी हाथ बटाय़ा। कायस्थों की तो उर्दू मानृभाषा ही हो गई थी। काश्मीरी पंडित रतननाथ ‘सरशार’ ने उर्दू में “फ़िसाने आज़ाद” नाम की एक ऐसी दिलचस्प किताब लिखी, जिसका उर्दू में जोड़ नहीं है। काश्मीरियों में अब भी उर्दू का प्रचार बहुत है। अब भी हिन्दुओं में उर्दू के बहुत अच्छे लेखक और कवि मौजूद हैं।

हमारे मुख्य प्रकाशन



कविता-कौमुदी, पहला भाग	३)
कविता-कौमुदी, दूसरा भाग	४॥)
कविता-कौमुदी, तीसरा भाग	३)
कविता-कौमुदी, चौथा भाग	३)
कविता-कौमुदी, पाँचवाँ भाग	३)
कविता-कौमुदी, छठा भाग (प्रेस में)	३)
कविता-कौमुदी, सातवाँ भाग	३)
पथिक, मिलन, स्वप्न	खण्ड काव्य
	प्रत्येक
	॥)
हिन्दुस्तानी कोष	२)
जयन्त, प्रेम-लोक	नाटक
	प्रत्येक
	॥)
तरकस (कहानियाँ)	॥)
रामचरितमानस, सटीक—(टीकाकार—त्रिपाठीजी)	५)
तुलसीदास और उनकी कविता, दो भाग	४॥)
नमूने का गाँव और मिट्टी के सुखदायक घर	१)
हमारा ग्राम-साहित्य	२)
हिन्दी-कविता का विकास	२)
काश्मीर (सचित्र, सजिल्द)	५)
मुस्लिम-संतों के चरित	२)
अयोध्या-कांड सटीक (सजिल्द)	॥)
हिन्दुओं के व्रत और त्योहार	१॥)
युरोप की कहानियाँ	२॥)
पॉकेट डिक्शनरी (हिन्दी-अंग्रेज़ी)	१॥)

बड़ा सूचीपत्र इस पते से मुफ्त मँगाइये—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

कविता-कौमुदी

चौथा भाग—उर्दू

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी-अक्षरों में उर्दू के बली, आबरू, मजमून, नाज़ी, यकरज़, हातिम, आरज़ू, फुग़ाँ, मजहर, सौदा, मीर, दर्द, मोज़, जुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नज़ीर, नासिख, आतश, ज़ौक, ग़ालिब, रिन्द, मोमिन, अनीस, दबीर, नसीम, अमीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर, चकबस्त और इक़बाल आदि मशहूर शायरों की दिल को हुलसानेवाली, तबीयत को फड़कानेवाली, कलेजे में गुदगुदी पैदा करनेवाली, आशिक़-भाशूक के चोचलों से चुहचुहाती हुई, महावरों की मौल में चुलबुलाती हुई, बारीक विचारों की मिठास से दिमाग़ को मस्त करनेवाली, निहायत शौख, बातों ही से हँसाने और रूलानेवाली उर्दू ग़ज़लों और तीर की तरह चुभनेवाले शेरों का अनोखा संग्रह है।

इसमें प्रारम्भ में उर्दू-ज़बान का निहायत दिलचस्प इतिहास भी है। कौमुदी-कुञ्ज में अन्य शायरों के निहायत मजेदार शेरों और ग़ज़लों का अनूठा संग्रह है।

छपाई-सफ़ाई मनोहर; काग़ज़ बढ़िया; कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द; दाम केवल तीन रुपये।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

से ३ घायल

हमारे कार्या. संवाददाता द्वारा) नई दिल्ली, ११ जून। अली-रधाने के अंतर्गत खंडा ग्राम एक पटारखे बनाने वाली फाँकटी आग लग जाने से ३ व्यक्ति घायल हो गए।

घायलों (बंद प्रकाश (१४), धर्मपाल (१६) और बलवीरसिंह (२०) को अस्पताल में इलाज के लिए ले जाया गया है। आशंका है कि बीड़ी की चिन्गारी से यह आग लगी है।

७ गिरफ्तार

पुलिसवालों पर हमले की कांशदा की। ट्रक पर सवार १० व्यक्तियों में से ७ को गिरफ्तार कर लिया गया है। बाकी ३ भागने में सफल हो गए ट्रक पर से कोई हथियार बरामद नहीं हुआ।

चीनी के बोरो सहित ट्रक पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया है और सरकारी कर्मचारी पर हमला करने और हत्या का प्रयास करने के आरोप का मामला सरायरहोवा पुलिस ने दर्ज

मलहारा ने आज के नोटिस के रस्तेगं के मालिक को मिलावटी दूध रखने के आरोप से बरी कर दिया। रस्तेगं मालिक पर अभियोग था कि उसके हाटल में जो दूध हस्त-मास हो रहा था, उसमें सफ़ा दूध में रहने वाली मात्रा से अधिक चिक-नाई थी। रासायनिक रिपोर्ट में भी अधिक चिकनाई निकली और उसे गाय के दूध के समकक्ष ठहराया गया था।



११ जून, १९७१ को निकाले गए टैनिंक ड्रा के परिणाम :-
एक प्रस्कार ५,०००)

No. D-240351

चार प्रस्कार : प्रत्येक १०००)

No. E-138451 A-257195
B-158646 C-010944

शेष सिरौजा में उपर्युक्त नम्बरो वाले टिकटों पर ५०) प्रत्येक के २० सांत्वना प्रस्कार।

निर्देशक, लघु बचत एवं राज्य

राजस्थान, जयपुर।

११ जून १९७१
 ११ जून १९७१
 ११ जून १९७१
 ११ जून १९७१
 ११ जून १९७१